CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3125

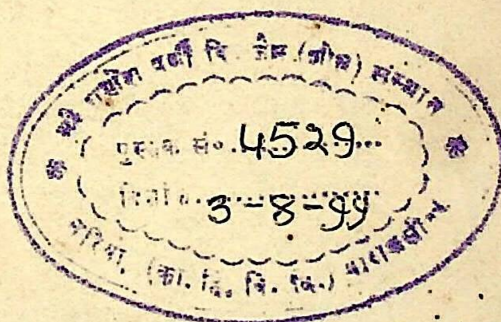
11A

बुद्धप्पियत्थेरविरचित

पज्जमधु

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ० कोमलचन्द्र जैन



तारा बुक एजेंसी

वाराणसी

१९८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुद्धप्पियत्थेरविरचित

पज्जमधु

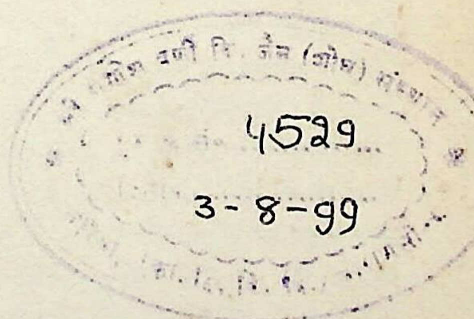
सम्पादक एवं अनुवादक

डा० कोमलचन्द्र जैन

प्राध्यापक—पालि

पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



तारा बुक एजेंसी

वाराणसी

१९८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम संस्करण, १९८३

मूल्य :

प्रकाशक—तारा बुक एजेंसी, कमच्छा, वाराणसी

मुद्रक—तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

भारतीय वाङ्मय में पालि-साहित्य का विशेष महत्त्व है। कारण, अन्धकार से ढके भारतीय इतिहास को सर्वप्रथम पालि-साहित्य ने ही प्रकाशित किया है। यदि पालि-साहित्य न होता तो ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी से ईसा तक का भारतीय इतिहास लुप्त हो गया होता। पालि साहित्य की सहायता से ही भारत का निश्चयात्मक इतिहास प्रारम्भ होता है। इसके अतिरिक्त इसी साहित्य से भगवान् बुद्ध, उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म एवं संस्थापित संघ की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। अतः आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के ज्ञान के लिये पालि-साहित्य का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

पालि साहित्य का क्षेत्र पालि शब्द के अर्थ पर निर्भर करता है। प्रारम्भ में पालि शब्द का अर्थ बुद्ध-वचन या बुद्ध-वचनों का संग्रह (त्रिपिटक) था। अतः पालि-साहित्य की परिधि में बुद्ध-वचनों का संग्रह अर्थात् मूल त्रिपिटक एवं उसका टीका (अट्ठकथा) साहित्य ही आता था। इसी कारण भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बौद्ध भिक्षुओं ने पूरी ईमानदारी एवं लगन के साथ बुद्ध-वचनों से सम्बद्ध साहित्य को सुरक्षित रखा। किन्तु जब त्रिपिटक एवं उसके भाष्यात्मक साहित्य का कार्य सम्पन्न हो गया तो भिक्षुओं ने बुद्ध-वचनों की भाषा में काव्य, अलंकारशास्त्र, व्याकरण, छन्दः शास्त्र के ग्रन्थों की भी रचना की। यहां यह उल्लेखनीय है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया पालि भाषा संस्कृत भाषा के समीप आती गयी। आज स्थिति यह है कि पालि शब्द का प्रयोग भाषा विशेष के अर्थ में किया जाने लगा है और उसका साहित्य मुख्यरूप से छः भागों में विभक्त किया जाता है। ये भाग हैं— १. त्रिपिटक, २. अनुपिटक, ३. अर्थकथा (अट्ठकथा), ४. वंश, ५. काव्य तथा ६. व्याकरण छन्दःशास्त्र, कोश आदि। इनमें से प्रथम चार भागों के प्रकाशन पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा (बिहार) से त्रिपिटक ४१ खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। वहीं से अट्ठकथा एवं वंश-साहित्य के ग्रन्थ भी प्रकाशित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहे हैं। अनुपिटक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ मिलिन्दपञ्हो का भी प्रकाशन हो चुका है। इसके अतिरिक्त उसका हिन्दी अनुवाद भी स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध है। व्याकरण, छन्दःशास्त्र एवं कोश सम्बन्धी ग्रन्थों के भी प्रकाशन का क्रम जारी है। इस प्रकार पालि-साहित्य के प्रमुख भागों में काव्य ग्रन्थों को छोड़कर अन्य सभी भागों के प्रकाशन की ओर ध्यान दिया जा रहा है। जहां तक पालि काव्य ग्रन्थों के देवनागरी लिपि में प्रकाशन की बात है, अभी तक इस ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। यद्यपि पालि के कुछ काव्य ग्रन्थों का देवनागरी लिपि में भी प्रकाशन हुआ है तथा कुछ हिन्दी अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हुए हैं किन्तु कुछ कारणों से ये प्रकाशित ग्रन्थ पाठकों को पालि काव्य साहित्य से परिचित एवं आकृष्ट नहीं कर सके हैं।

पालि के काव्य ग्रन्थों के प्रति सामान्य उपेक्षा का उत्तरदायित्व उन लोगों पर है, जिन्होंने पालि के काव्य ग्रन्थों की भाषा एवं शैली को नीरस एवं कृत्रिम बताया है। यह सच है कि पालि के काव्य ग्रन्थों में काव्योचित रसात्मकता का अभाव है, किन्तु इस अभाव का भी कारण है। स्थविर-वादी (थेरवादी) परम्परा में रसात्मकवाक्यों का प्रयोग सर्वदा हेय दृष्टि से देखा गया है। ऐसी परिस्थिति में काव्य ग्रन्थों का निर्माण ही क्या कम साहस की बात थी? जो भी हो, काव्य ग्रन्थों की रचना कर भिक्षुओं ने पालि-साहित्य के इस अभाव की पूर्ति की है। इसलिए पालि काव्य ग्रन्थों के रचयिता निश्चित ही सराहना के पात्र हैं।

इसके अतिरिक्त काव्य ग्रन्थों का योजनाबद्ध ढंग से प्रकाशित न होना, एक काव्य ग्रन्थ के प्रकाशन के पर्याप्त अन्तराल के बाद दूसरे काव्य ग्रन्थ का प्रकाशित होना आदि भी ऐसे कारण है, जो पालि काव्य ग्रन्थों के प्रति व्याप्त उदासीनता को बढ़ावा देते हैं। आज स्थिति यह है कि देव-नागरी लिपि में कोई भी महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। जब कोई विद्वान् किसी संकलन-ग्रन्थ में उद्धृत पालि काव्य ग्रन्थ के किसी अंश को पढ़ता है तो सहसा आश्चर्य चकित हो जाता है और पूछने लगता है कि पालि में काव्य-ग्रन्थ भी हैं?

इन्हीं सब कारणों से अन्य लिपियों में उपलब्ध पालि के काव्य ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद के साथ योजनाबद्ध तरीके से प्रकाशित करने की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा मेरे मन में उत्पन्न हुई और उसी इच्छा के फल स्वरूप पालि काव्य साहित्य के प्रथम पुष्प के रूप में पज्जमधु पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा।

पज्जमधु

बुद्धप्रिय स्थविर द्वारा विरचित पज्जमधु भक्ति-भावना से ओतप्रोत एक लघु काव्य ग्रन्थ है। यह शतक साहित्य की श्रेणी में आता है। पज्ज-मधु का अर्थ है—पद्यरूपी मधु। चूंकि इसके पद्यों में मधु जैसा आनन्द (मिठास) विद्यमान है, अतः इसका नाम पज्जमधु रखा गया है। इसमें कुल १०४ पद्य हैं। इनमें १०३ पद्य वसन्ततिलका छन्द में हैं, किन्तु अन्तिम पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में है। यहाँ ग्रन्थ के सामान्य परिचय के प्रसंग में कवि-परिचय, रचना-काल, भाषा, भाव एवं शैली को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

कवि-परिचय—कवि बुद्धप्रिय ने पज्जमधु के पद्य (संख्या १०३) में आनन्दवनरतन को अपना गुरु बताकर अपने विषय में जानने का आधार प्रदान किया है। आनन्दवनरतन मूलतः भारतीय थे, किन्तु बाद में श्रीलंका चले गये और वहाँ अरण्यवासी सम्प्रदाय के प्रमुख बन गये। आनन्द ख्यातिप्राप्त विद्वान् थे और इन्होंने बुद्धमित्र के अनुरोध पर बुद्धघोष की अभिधम्मपिटक की अट्ठकथाओं पर 'मूलटीका' नामक ग्रन्थ लिखा। इनके तीन प्रमुख शिष्य थे—गौतम स्थविर (गोतम थेर), चोलियदीपंकर तथा वैदेह स्थविर (वेदेह थेर)। इनमें चोलियदीपंकर का ही दूसरा नाम बुद्धप्रिय था। ये प्रारम्भ में दक्षिण भारत के चोल राष्ट्र के रहनेवाले थे। इन्होंने लंका में जाकर आनन्दवनरतन से शिक्षा ग्रहण की। द्रविड़ देश में अपनी विद्वत्ता से ये चोलियदीपंकर कहे जाने लगे। वहां ये चूड़ामाणिक्य एवं बालादिच्च विहारों के प्रमुख थे। कालान्तर में लंका में बुद्ध-शासन को दृढ़ करने के लिये परक्कमबाहु ने इन्हें चोल देश से श्रीलंका बुला लिया। इन्होंने पज्जमधु के अतिरिक्त व्याकरण पर रूपसिद्धि नामक ग्रन्थ भी लिखा है। यह कच्चायन के सन्धिकप्प पर आधारित है, किन्तु स्पष्ट एवं व्यापक है।

रचना-काल—पज्जमधु के रचना-काल में विषय में दो मत उपलब्ध होते हैं। प्रथम मत के अनुसार ११वीं शताब्दी में लिखित रूपसिद्धि का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक होने से बुद्धप्रिय को ११वीं शताब्दी का माना गया है। फलतः पज्जमधु का रचना-काल ११वीं शताब्दी सिद्ध किया जाता है। इसके विपरीत द्वितीय मत के अनुसार बुद्धप्रिय को १३वीं शताब्दी का माना गया है। इस मत की पुष्टि में कहा गया है कि चूंकि बुद्धप्रिय एवं वैदेह स्थविर—ये दोनों ही आनन्दवनरतन के शिष्य थे, अतः ये दोनों समकालीन थे। वैदेहस्थविर की रचनायें (समन्तकूटवण्णना एवं रसवाहिनी) निश्चित रूप से १३वीं शताब्दी की हैं। अतः पज्जमधु का भी रचना काल १३वीं शताब्दी होना चाहिए। यहाँ द्वितीय मत ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

भाषा—इतिहासकारों ने पालि-भाषा के विकास की जिन चार अवस्थाओं का वर्णन किया है, उनमें पज्जमधु की भाषा चौथी अवस्था का रूप प्रकट करती है। यद्यपि यह भाषा पालि के प्राचीन रूप पर आधारित है तथापि कवि ने नवीन रूपों का भी प्रयोग किया है। इसकी भाषा में संस्कृत का बढ़ता हुआ प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने कहीं-कहीं ह्रस्व स्वरों को दीर्घ, दीर्घ स्वरों को ह्रस्व, व्यञ्जनों को द्वित्व, व्यञ्जन-ह्रास, अनुस्वार-लोप, अनुस्वार-आगम आदि करके छन्द सम्बन्धी नियमों का पालन किया है जिसे बोधिनी में स्पष्ट किया गया है।

भाव—यद्यपि बुद्धप्रिय थेरवादी कवि थे, किन्तु उनकी रचना में विद्यमान भक्ति-भावना उन्हें थेरवादियों से कुछ अलग-सा कर देती है। उन्होंने बुद्ध के अंगों एवं गुणों की स्तुति के साथ-साथ प्रत्येक पद्य में वरदान भी माँगा है। वरदानों में उन्होंने निर्वाणरूपी वधू के साथ पूर्ण समागम तथा धन, शान्ति एवं मित्र की भी कामना की है। फिर भी उन्होंने बुद्ध के रूप एवं गुणों के स्तवन में थेरवादियों के मूल सिद्धान्तों को यथासम्भव आधार बनाया है।

शैली—कवि बुद्धप्रिय भगवान् बुद्ध को सुन्दरता एवं अनुकरणीय गुणों का वर्णन करते हुए उपमा एवं रूपकों की वर्षा-सी कर देता है। कहीं वह अपनी कल्पना में स्वयं ही भटक-सा जाता है तो कहीं श्लेषों में डूब जाता है। तात्पर्य यह है कि बुद्ध के स्तवन को अलंकारों से परिपूर्ण करने के लिये कवि ने हर सम्भव प्रयास किया है। संस्कृत के काव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थों की तुलना में भले ही इसकी शैली कहीं-कहीं कृत्रिम एवं नीरस प्रतीत हो, किन्तु पालि में अलंकारों से भरपूर काव्य ग्रन्थों के खटकने वाले अभाव को मिटाने के लिये कवि ने जो प्रयास किया है, वह सराहनीय है।

पज्जमधु के प्रस्तुत संस्करण को तैयार करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि प्रकाशित होने के बाद यह ग्रन्थ लोकप्रिय बने तथा इसे पालि के पाठ्यक्रमों में उचित स्थान मिले। फलतः प्रत्येक पद्य का अन्वय एवं हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त बोधिनी के माध्यम से अस्पष्ट स्थलों को स्पष्ट करने का तथा मूल में रह गयी त्रुटियों को सुधारने का प्रयास भी किया गया गया है। इतना सब करने के बाद भी अशुद्धियों का रह जाना सम्भव है जिसके लिये मैं पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ।

इस ग्रन्थ को तैयार करते समय मुझे आदरणीय प्रोफेसर डा० विश्वनाथ भट्टाचार्य (संस्कृत विभाग, का० हि० वि० वि०) से सदैव प्रेरणा एवं अमूल्य सुझाव प्राप्त हुए हैं, अतः मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। इस प्रसंग में श्री रमाशंकर को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरा अनुरोध स्वीकार कर इसे समय पर प्रकाशित किया है।

कोमलचन्द्र जैन

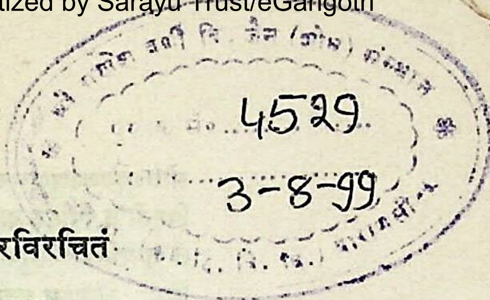
१३३-१३४ ए,
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी-५
दिनांक १०-४-८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri



बुद्धप्पियत्थेरविरचितं

पज्जमधु

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

उण्णापपुण्णससिमण्डलतो गलित्वा
पादम्बुजंगुलिदलट्ठसुधालवानं ।
पन्ती'व सत्थु नखपन्ति पजाविसेसं
पीणेतु सुद्धसुखितम्मणतुण्डपीता ॥ १ ॥
खित्ताय माररिपुना परिवत्थ सत्थु
पादस्सया जितदिसाय सितत्तलाय ।
या जेति कञ्चनसरावलिया सिरिं सा
देत'ङ्गिनं रणजयं'गुलिपन्ति कन्ता ॥ २ ॥

उस अर्हत् भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध को नमस्कार हो।

अन्वय—उण्णापपुण्णससिमण्डलतो गलित्वा पादम्बुजंगुलिदलट्ठसुधालवानं पन्तीव सत्थु सुद्धसुखितम्मणतुण्डपीता नखपन्ति पजाविसेसं पीणेतु ।

अर्थ—ऊर्णा (भौहों के बीच की भँवरी) रूपी पूर्ण चन्द्रमण्डल से गिरकर पैरोंरूपी कमलों के अंगुलियोंरूपी पत्तों पर आठ अमृत की बिन्दुओं की तरह शास्ता की शुद्ध एवं सुखी मन वालों के द्वारा चूमी गई नखपंक्ति प्रजाविशेष को प्रसन्न करे ॥१॥

अन्वय—माररिपुना सत्थु परिवत्थ खित्ताय जितदिसाय सितत्तलाय कञ्चनसरावलिया सिरिं या पादस्सया जेति सा कन्ता अंगुलिपन्ति अंगिनं रणजयं देतु ।

अर्थ—मार (कामदेव) रूपी शत्रु के द्वारा शास्ता (भगवान् बुद्ध) को घेरकर फेंकी गई, शत्रुओं की जीतने वाली तथा पैने तलभागवाली स्वर्ण वाणों की पंक्ति की शोभा को जो पैरों में आश्रित होकर जीतती है वह सुन्दर अंगुलियों की पंक्ति प्राणियों के लिए युद्ध में जय प्रदान करे ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोवण्णवण्णसुखुमच्छविसोम्मकुम्म-
पिट्ठी'व पिट्ठि कमतुन्नति भाति येसं ।
ते सुप्पतिट्ठितसुकोमलदीघपण्हि-
पादा जिनस्स पददन्तु पदं जनस्स ॥ ३ ॥

अच्छेरपङ्कजसिरिं सिरिया सकाय
ये मद्दिनो विय चरन्ति सरोजसोसे ।
सञ्चुम्बिता विय च तेहि परागरागा
ते नीरजा मुनिपदा पददन्तु लक्खि ॥ ४ ॥

आगामिकालजनमङ्गलभत्तुभावं
व्याकत्तुम'त्र कुसलेनि'व निम्मितानि ।

अन्वय—सोवण्णवण्णसुखुमच्छविसोम्मकुम्मपिट्ठीव येसं कमतुन्नति पिट्ठि भाति ते जिनस्स सुप्पतिट्ठितसुकोमलदीघपण्हिपादा जनस्स पदं पददन्तु ।

अर्थ—सोने के वर्ण तथा सुकुमार त्वचा वाले सुन्दर कछुए की पीठ के समान जिनका क्रम से उठा हुआ पृष्ठ भाग सुशोभित होता है, वे जिन (बुद्ध) के अच्छी तरह से जमने वाले, सुकोमल एवं बड़ी एड़ीवाले पैर मनुष्य को (उत्तम) पद (=निर्वाण) प्रदान करें ॥३॥

अन्वय—ये सकाय सिरिया अच्छेरपङ्कजसिरिं मद्दिनो विय सरोजसीसे चरन्ति, तेहि च परागरागा सञ्चुम्बिता विय, ते नीरजा मुनिपदा लक्खि पददन्तु ।

अर्थ—जो (पैर) अपनी शोभा से आश्चर्य कमल की शोभा को कुचलते हुए-से कमल के ऊपर चलते हैं तथा उन (पैरों) के द्वारा पराग का रंग चूम-सा लिया गया है, वे विशुद्ध मुनि (बुद्ध) के पैर (सबको) लक्ष्मी प्रदान करें ॥४॥

अन्वय—अत्र आगामिकालजनमङ्गलभत्तुभावं व्याकत्तुं कुसलेन निम्मितानि इव यत्र अट्ठसतमङ्गललक्खणानि आसुं नं पदयुगं जयमङ्गलानि साधेतु ।

अर्थ—यहाँ (इस दुनिया में) भविष्य (तथा वर्तमान) काल के मनुष्यों के मङ्गल के स्वामिभाव को प्रकट करने के लिए ब्रह्मा द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्रा'सुम'ट्ठसतमङ्गललक्खणानि
साधेतु नं पदयुगं जयमङ्गलानि ॥ ५ ॥
सस्सेविजन्तुवरसन्तिपुरप्पवेसे
निच्चं सुसज्जठपितानि' व मङ्गलाय ।
ये ते दधन्ति कलमङ्गललक्खणानि
वत्तन्तु ते जिनपदा जयमङ्गलाय ॥ ६ ॥
सब्बे'भिभूय सपदेसु निपातनस्स
सञ्ञाणकं विय यदस्सितसब्बलोको ।
पादा त्य'धोकततिलोकसिरोवरा पि
लोकं पुनन्तु जयमङ्गलकारणानि ॥ ७ ॥
लोकत्तयेकसरणत्तविभावनाय
सज्जो' व तिट्ठति यहिं सुविभत्तलोको ।

बनाये गए-से जहाँ आठ सौ मङ्गल लक्षण विद्यमान हैं, वह पैरों का जोड़ा (मनुष्यों के) जय तथा मङ्गलों को सिद्ध करे ॥५॥

अन्वय—ये सस्सेविजन्तुवरसन्तिपुरप्पवेसे मङ्गलाय इव निच्चं सुसज्जठपितानि कलमङ्गललक्खणानि दधन्ति ते जिनपदा ते जयमङ्गलाय वत्तन्तु ।

अर्थ—जो (पैर) अपने सेवक प्राणियों के लिए उत्तम शान्तिपुर (= निर्वाण) के प्रवेश में मङ्गलार्थ ही मानो सदा ठीक से स्थापित (अंकित) उत्तम मङ्गल लक्षणों को धारण करते हैं, वे जिन (बुद्ध) के पैर तुम्हारी जय तथा मङ्गल के लिए होवें ॥६॥

अन्वय—निपातनस्स सञ्ञाणकं विय सपदेसु सब्बे अभिभूय यदस्सितसब्बलोको, ते अधोकततिलोकसिरोवरा अपि जयमङ्गलकारणानि पादा लोकं पुनन्तु ।

अर्थ—निपातन (पतन) का सूचक मानकर ही मानो समान (कोटि के इतर देवों के पैरों) में से सभी (पैरों) को तिरस्कृत कर ही समस्त संसार जिनके आश्रित है, वे तीन लोकों के श्रेष्ठ मस्तकों को झुकानेवाले तथा जय एवं मङ्गल में कारणभूत चरण लोक को पवित्र करें ॥७॥

अन्वय—यहिं सुविभत्तलोको लोकत्तयेकसरणत्तविभावनाय सज्जो व तिट्ठति, तं सब्बलोकपटिबिम्बितदप्पणाभं पादद्वयं जनसुसज्जनहेतु होतु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं सब्बलोकपटिबिम्बितदप्पणाभं
पादद्वयं जनसुसज्जनहेतु होतु ॥ ८॥

लोकुत्तराय सिरिया'धिगमाय सुट्ठु
राजन्ति यत्थ दिगुणानि'व पातुभूता।
चक्का सनाभिसहनेमिसहस्सरानि
त्य'ङ्घी दिसन्तु सकलि'स्सरियं जनस्स ॥ ९ ॥

यत्रु'ल्लसन्ति दुविधानि'व पातुभूता
धम्मस्स सब्बभुवनस्स च इस्सरत्ते।
चक्कानि चक्कसदिसानि सुदस्सनस्स
तान'ज्ज जन्तुसरणा चरणानि होन्तु ॥ १० ॥

अर्थ—जहाँ (विभिन्न जन्मों में) अच्छी तरह से व्यवस्थित संसार त्रिलोक में एक मात्र शरणपने के दृढ़ विश्वास के साथ तैयार-सा रहता है, वह समस्त लोक को प्रतिबिम्बित करने वाले दर्पण के समान पैरों का जोड़ा मनुष्यों को (निर्वाण के लिए) ठीक से प्रेरित करने में कारण हो ॥८॥

अन्वय—यत्थ लोकुत्तराय सिरिया सुट्ठु अधिगमाय इव पातुभूता सनाभिसहनेमिसहस्सरानि चक्का दिगुणानि राजन्ति, ते अङ्घी जनस्स सकलिस्सरियं दिसन्तु।

अर्थ—जहाँ पर लोकोत्तर सम्पत्ति (निर्वाण) की ठीक से प्राप्ति के लिए ही मानो प्रकट हुए नाभि, नेमि तथा हजार आराओं वाले चक्र दुगुने रूप से (दो पैरों में) शोभित हो रहे हैं, वे पैर मनुष्य के लिए समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें ॥९॥

अन्वय- यत्र सुदस्सनस्स चक्कसदिसानि पातुभूता चक्कानि धम्मस्स सब्बभुवनस्स च इस्सरत्ते इव दुविधानि उल्लसन्ति, तानि चरणानि अज्ज जन्तुसरणा होन्तु।

अर्थ— जहाँ सुदर्शन के चक्र के समान प्रकट हुए चक्र धर्म तथा समस्त संसार के प्रभुत्व को (जताने के लिए) ही मानो दो प्रकार से (दुगुने रूप से) सुशोभित हो रहे हैं, वे पैर आज प्राणियों की शरण हों ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्तेसु वच्छतु सिरी सिरिवच्छकेन
सोवत्थि सोत्थिम'नुतिट्ठतु पुग्गलेसु ।
नन्दि जनानम'नुवत्ततु नन्दिवत्ती
सीसान'लंकुरुतु पादवतंसको पि ॥ ११ ॥
भद्दाय पीठमु'पगच्छतु भद्दपीठं
वुद्धि जनानम'नुवत्ततु वद्धमानं ।
पुण्णत्तम'ङ्गिम'नुकुब्बतु पुण्णकुम्भो
पाती च पातु सततं जनतं अपाया ॥ १२ ॥
सेतातपत्तम'पनेतम'घातपे'तं
खग्गो विछिन्दतु सदा दुरितारिवग्गे ।

अन्वय—सिरिवच्छकेन सत्तेसु सिरी वच्छतु, सोवत्थि पुग्गलेसु सोत्थि अनुतिट्ठतु, नन्दिवत्ती जनानं नन्दि अनुवत्ततु, पादवतंसको पि सीसानलंकुरुतु ।

अर्थ—श्रीवत्स (बुद्ध के सीने में स्थित चिह्नविशेष) के कारण प्राणियों में श्री (सम्पत्ति) निवास करे, स्वस्तिक (चिह्नविशेष) मनुष्यों में कल्याण (उत्पन्न) करे, दक्षिणावर्त (दाहिनी ओर घुमाव वाला) शंख (चिह्नविशेष) मनुष्यों को प्रसन्न करे तथा पैरों का आभूषण भी (नमस्कार करने वालों के) शिरों को विभूषित करें ॥११॥

अन्वय—भद्दपीठं भद्दाय पीठं उपगच्छतु, वद्धमानं जनानं वुद्धि अनुवत्ततु, पुण्णकुम्भो अङ्गि पुण्णत्तं अनुकुब्बतु, पाती च जनतं अपाया सततं पातु ।

अर्थ—भद्रपीठ (बुद्धत्व-प्राप्ति का आसन) कल्याण का आधार बने, वर्द्धमान (चिह्नविशेष) मनुष्यों के लिए वृद्धि दे, (जल से) पूर्ण कुम्भ प्राणी को पूर्णता दे तथा (भिक्षा-) पात्र मनुष्यों की कष्ट से सदा रक्षा करे ॥१२॥

अन्वय—सेतातपत्तं एतं अघातपं अपनेतु, खग्गो सदा दुरितारिवग्गे विछिन्दतु, सतालवण्टसंवीजनी संक्लेशदाहं अपनेतु, मोरहत्थो कुमतिमक्खिकं (अपनेतु) ।

अर्थ—सफेद छत्र इस अघ (पाप) रूपी धूप को दूर करे, खड्ग सदा पापरूपी शत्रु-समूहों का छेदन करे, तालवृक्ष के पत्तों से बना पंखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्लेसदाहम'पनेतु सतालवण्ट-
संवीजनी, कुमतिमक्खिक मोरहत्थो ॥ १३ ॥
आकड्ढनो जनविलोचनम'त्तनिन्नं
वारेतु सब्बगतिवारणमं'कुसो सो।
पादम्बुजं सिरिविलासनिकेतनं'व
पासादलक्खणमु'पेतु मनोपसादं ॥ १४ ॥
पाणीनम'त्तभजतं वरपुण्णपत्तं
सम्मा ददातु पदनिस्सितपुण्णपत्तो।
पादेसु जन्तुमनबन्धनदामभूतं
दामं दमेतु विमलं जनतं मनानि ॥ १५ ॥
उण्हीसकुप्पलमणीपदुमेहि पादा
सस्सेविजन्तुकरणानि विभूसयन्तु।

संक्लेशरूपी जलन को दूर करे (तथा) मयूर-पंखों का गुच्छा (मयूर-हस्त—हाथ भर के मयूर-पंख) कुमतिरूपी मक्खी को (दूर करे) ॥१३॥

अन्वय—अत्तनिन्नं जनविलोचनं आवड्ढनो सो अंकुसो सब्बगतिवारणं वारेतु, सिरिविलासनिकेतनं इव पादम्बुजं मनोपसादं पासादलक्खणं उपेतु।

अर्थ—अपनी ओर मनुष्यों की निगाह को खींचनेवाला वह अंकुश सभी (छः) गतियों रूपी हाथी को नियन्त्रित करे, लक्ष्मी के विलास (आमोद-प्रमोद) के लिए घर के समान पैररूपी कमल मन को प्रसन्न करनेवाले प्रासाद की विशेषता को प्राप्त करे ॥१४॥

अन्वय—पदनिस्सितपुण्णपत्तो अत्तभजतं पाणीनं वरपुण्णपत्तं सम्मा ददातु, पादेसु जन्तुमनबन्धनदामभूतं विमलं दामं जनतं मनानि दमेतु।

अर्थ—पैरों में स्थित (जल से) भरा पात्र अपने (बुद्ध) को भजने वाले प्राणियों के लिए वररूपी पूर्ण पात्र ठीक से दे, पैरों में (स्थित) प्राणियों के मन की बन्धनमाला (शृङ्खला) भूत निर्मल माला जनता के मनों को नियन्त्रित करे ॥१५॥

अन्वय—पादा उण्हीसकुप्पलमणीपदुमेहि (विभूसितानि) सस्सेविजन्तुकरणानि विभूसयन्तु। समुद्दो सन्नेत्तनावुपगतानं अनग्घकानि बोज्झङ्गसत्तरतनानि ददे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्नेत्तनावुपगतानम'नग्घकानि
बोज्झङ्गसत्तरतनानि ददे समुद्दो ॥ १६ ॥

उत्तुङ्गनिच्चलगुणो जितताय निच्चं
सेवी'व पादसिरिनिच्चसमुब्बहं'व ।
अत्रा'पि सक्कभवनु'ब्बहणे नियुत्तो
पादट्ठमेरु भवतं भवतं विभूत्या ॥ १७ ॥

सो चक्कवाळसिखरी'प्य'वतं समन्ता
सब्बूपसग्गविसरा जनतं समग्गं ।
दीपा पिथू पि चतुरो द्विसहस्स खुद्दा
धारेन्त्व'पायपतमानम'दत्व जन्तुं ॥ १८ ॥

अर्थ—(बुद्ध के) पैर पगड़ी, कली, मणि तथा कमल से (असफल रूप से विभूषित) अपने सेवक प्राणियों के अंगों (शिरों) को विभूषित करें तथा उत्तम लक्षणों वाला (बुद्ध का हाथ) अच्छे नेता (बुद्ध) की नौका में आने वाले प्राणियों के लिए अमूल्य बोध्यङ्गरूपी सात रत्नों को दे ॥१६॥

अन्वय—उत्तुङ्गनिच्चलगुणो जितताय निच्चं सेवीव पादसिरिनिच्च-समुब्बहंव सक्कभवनुब्बहणे नियुत्तो अपि अत्र पादट्ठमेरु भवतं विभूत्या भवतं।

अर्थ—अत्युन्नत एवं स्थिर—(इन) गुणों से युक्त, जीते जाने से नित्य सेवक की तरह पैरों की शोभा को नित्य धारण करते हुए के समान (तथा) इन्द्र के महल के सहारे के लिए नियुक्त होता हुआ भी यहाँ पैरों में स्थित मेरु आपकी विभूति के लिए हो ॥१७॥

अन्वय—सो चक्कवाळसिखरी अपि समन्ता सब्बूपसग्गविसरा समग्गं जनतं अवतं। चतुरो पुथू दीपा द्विसहस्स खुद्दा अपि जन्तुं अपायपतमानं अदत्व (अदत्वा) धारेन्तु।

अर्थ—वह चक्रवाल पर्वत भी सभी ओर से (आने वाली) समस्त विपत्ति-समूह से समस्त जनता की रक्षा करे। चार बड़े द्वीप (तथा) दो हजार छोटे (द्वीप) भी प्राणी को कष्ट में न गिराकर सहारा दें ॥१८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूरो पबोधयतु जन्तुसरोरुहानि
चन्दो पसादकुमुदानि मनोदहेसु ।
नक्खत्तजातम'खिलं सुभताय होतु
चक्कं धजं रिपुजयाय जयद्धजाय ॥ १९ ॥

जेतुं ससंसदसुदस्सनचक्कवत्ति-
चक्कानुगन्तललितं यहिमा'वहेय्य ।
चक्कानुवत्तिपरिसावुतचक्कवत्ति-
नं वत्ततं पदयुगं जनताहिताय ॥ २० ॥
पूजेतुमा'गतवता वजिरासनट्ठं
इन्देन छड्ढितमहाविजयुत्तराख्यं ।

अन्वय—सूरो जन्तुसरोरुहानि पबोधयतु, चन्दो मनोदहेसु पसादकुमुदानि (पबोधयतु), अखिलं नक्खत्तजातं सुभताय, चक्कं रिपुजयाय, धजं जयद्धजाय होतु ।

अर्थ—सूर्य प्राणीरूपी कमलों को विकसित करे, चन्द्र मनरूपी सरोवरों में प्रसन्नतारूपी कुमुदों को (विकसित करे)। सम्पूर्ण नक्षत्र समूह अच्छाई के लिए, चक्र शत्रुओं को जीतने के लिए (तथा) ध्वज जयध्वज के लिए हो ॥१९॥

अन्वय—यहिं ससंसदसुदस्सनचक्कवत्तिचक्कानुगन्तललितं (पदयुगं) चक्कानुवत्तिपरिसावुतचक्कवत्तिनं जेतुं आवहेय्य, (तं) पदयुगं जनताहिताय वत्ततं ।

अर्थ—जहाँ संसद सहित सुदर्शन चक्रवर्ती के चक्र के समान सुन्दर (पद-युगल) चक्र के पीछे चलने वाले पुरुष-समूह से घिरे हुए चक्रवर्तियों को जीतने के लिए चिनौती दे, (वह) पद-युगल जनता के हित के लिए हो ॥२०॥

अन्वय—वजिरासनट्ठं पूजेतुं आगतवता इन्देन छड्ढितमहाविजयुत्तराख्यं सङ्खं मारभया पदाधो पविट्ठमिव इह पादट्ठसङ्खं वो सन्तिया वत्ततु ।

अर्थ—वज्रासन में स्थित (भगवान् बुद्ध को) पूजने के लिए आये हुए इन्द्र के द्वारा छोड़ा गया (विस्मृत किया गया) 'महाविजय' इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सङ्खं पविटठमि'व मारभया पदाधो
पादट्ठसङ्खमि'ह वत्ततु सन्तिया वो ॥ २१ ॥

सोवण्णमच्छयुगलं सिवभत्तभोग-
इच्छाबहूपकरणं भवतं जनानं ।
कुम्भीलधिग्गहिततो'व पदुट्ठचित्ता
पादम्बुजाकर विगाहितु नो पहोन्तु ॥ २२ ॥

सत्तापगा जनमनोजमले जहन्तु
संक्लेसदाहम'पनेन्तु दहा च सत्त ।
सेला च सत्त विदधन्तु जनस्स तानं
लोकप्पसिद्धिजनने भवतं पताका ॥ २३ ॥

श्रेष्ठ नाम वाला शंख मार (काम) के भय से पैरों के नीचे से प्रविष्ट हुआ जैसा यहाँ पैरों में स्थित शंख तुम लोगों को शान्ति के लिए हो ॥२१॥

अन्वय—सोवण्णमच्छयुगलं जनानं सिवभत्तभोगइच्छाबहूपकरणं भवतं। कुम्भीलधिग्गहिततो एव पदुट्ठचित्ता नो पादम्बुजाकरं विगाहितुं पहोन्तु।

अर्थ—सोने की मछली (के समान कुण्डलों) का जोड़ा मनुष्यों की शिव (कल्याण), भक्त (भोजन) तथा भोग की इच्छाओं (को पूर्ण करने) में भारी उपकरण (साधन) हो। मगर की भयंकर पकड़ से ही अत्यधिक घबड़ाये हुए हम लोग पैररूपी तालाब में डूबने के लिए समर्थ हों ॥२२॥

अन्वय—सत्तापगा जनमनोजमले जहन्तु, सत्त च दहा संक्लेसदाहं अपनेन्तु। सत्त च सेला जनस्स तानं विदधन्तु, पताका लोकप्पसिद्धिजनने भवतं।

अर्थ—सात नदियाँ मनुष्य के मन में उत्पन्न मलों को धोवें, तथा सात सरोवर संक्लेशरूपी ताप को दूर करें। सात पर्वत मनुष्य की रक्षा करें, (तथा) पताका लोक में (बुद्ध शासन की) प्रसिद्धि करने में (सहायक) हो ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाटङ्कि सन्तिगमने भवतू'पकारा
दाहत्तने सुजहतं पदचामरं च।
सल्लोकलोचनमहुस्सवउस्सितं'व
वत्तेय्य तोरणम'नुत्तरमङ्गलाय ॥ २४ ॥

यस्मिं मिगिन्दगतभीतिबलावदड्ढ-
दानानता सिरविदारणपीळिता'व।
नाळागिरी करिवरो गिरिमेखलो च
तं सीहविक्कमपदं हनता'घदन्ति ॥ २५ ॥

पापाहिनो हनतु पादसुवण्णराजा
व्यग्घाधिपो कलिजने अदतं असेसं।

अन्वय—पाटङ्कि सन्तिगमने उपकारा भवतु, तं पदचामरं दाहत्तने सुजहतं। सल्लोकलोचनमहुस्सवउस्सितं व तोरणं अनुत्तरमङ्गलाय वत्तेय्य।

अर्थ—(बुद्ध का) उठा हुआ आसन (पालकी) निर्वाण-गमन में उपकारी हो, पैरों में स्थित चाँवर ताप को हटाये। अच्छे मनुष्यों की आँखों के हर्ष के लिए ही मानो उठा हुआ तोरण (फाटक) उत्कृष्ट मङ्गल के लिए हो ॥२४॥

अन्वय—यस्मिं (पदे) नाळागिरी गिरिमेखलो च करिवरो मिगिन्दगतभीतिबलावदड्ढदाना (हुत्वा) सिरविदारणपीळिता इव आनता (अहेसुं), तं सीहविक्कमपदं अघदन्ति हनतु।

अर्थ—जहाँ (पैर में) नालागिरी तथा गिरिमेखला नामक श्रेष्ठ हाथी सिंहविषयक अत्यधिक भय से सूखे हुए मदजलवाले होकर शिर के विदारण (के भय) से पीड़ित होकर मानो झुके हुए हैं, वे (बुद्ध के) सिंह के समान विक्रमवाले पैर (मनुष्यों के) पापरूपी हाथी का हनन करें ॥२५॥

अन्वय—पादसुवण्णराजा पापाहिनो हनतु, व्यग्घाधिपो कलिजने असेसं अदतं, वालाहअस्सपति पजायो अपायेसु अदत्वा सन्तिपुरं पापयतु।

अर्थ—पैरों (में स्थित) गरुड़राज पापरूपी सर्पों को मारे, व्याघ्रराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वालाहअस्सपति सम्पतितुं अदत्वा
पायेसु पापयतु सन्तिपुरं पजायो ॥ २६ ॥
छद्दन्तदन्तिललितं गलितं रुसम्हा
लुद्दत्तदुब्भिनि दिसे अचलं दधानो ।
पादट्ठहत्थिपति सम्पति जन्तुतासे
तासेतु हासम'परं दिसतं सतानं ॥ २७ ॥
सब्ब'ङ्गिनो चरणु'पोसथहत्थिराजा
पापेतु सब्बचतुदीपकरज्जलक्खि ।
कित्ती'व पादपरिचारिकता नियुत्ता
केलाससेलपटिमा हितमा'चरेय्य ॥ २८ ॥
सामिस्स हंससमये दहपासबद्ध-
मा'सोनवेसगमको विय पादहंसो ।

दुष्ट पुरुषों को पूर्णरूप से खाये, वालाह नामक अश्वपति प्रजा को कष्टों में न गिराकर शान्तिपुर (=निर्वाण) में पहुँचाये ॥२६॥

अन्वय—रुसम्हा लुद्दत्तदुब्भिनि दिसे छद्दन्तदन्तिललितं, गलितं अचलं दधानो पादट्ठहत्थिपति जन्तुतासे अपरं सतानं दिसतं हासं तासेतु ।

अर्थ—क्रोध से रौद्र एवं द्वेष युक्त शत्रु पर (प्रहार करने के लिए) छद्दन्त (षड् दन्त) नामक हाथी के समान, (पर्वत से) पृथक् की गई चट्टान को धारण करनेवाला पैरों में स्थित गजराज प्राणियों के दुःखों को तथा सैकड़ों शत्रुओं के आनन्द को हटाये ॥२७॥

अन्वय—चरणुपोसथहत्थिराजा सब्बङ्गिनो सब्बचतुदीपकरज्जलक्खि पापेतु। पादपरिचारिकता नियुत्ता कित्ती व केलाससेलपटिमा हितमाचरेय्य ।

अर्थ—(भगवान् बुद्ध के) चरणों का उपासक अथवा उपोसथ के दिन बुद्ध के चरणों में स्थापित गजराज समस्त प्राणियों के लिए चारों द्वीपों की राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कराये। पैरों में नौकरानी के रूप में नियुक्त कीर्ति के समान (श्वेत) कैलास पर्वत की प्रतिमा (सभी प्राणियों के) हित का आचरण करे ॥२८॥

अन्वव—सामिस्स हंससमये दहपासबद्धं आसीनवेसगमको विय, निग्घोसगन्तिजितत्तो मूगपक्खो विय पादहंसो सब्बजनताभवगन्तुकत्तं वारेतु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निग्घोसगन्तिजिततो विय मूगपक्खो
वारेतु सब्बजनताभवगन्तुकत्तं ॥ २९ ॥

ओहाय दिब्बसरसिं'खिललोकसब्ब-
रम्मङ्घिवापिम'वगाहितवा'व पादे ।
एरावणो करिवरो मनसा'भिरूळ्हे
जन्तुं पुरिन्दरपुरं नयतं'व सीघं ॥ ३० ॥

हित्वा सकं भवनम'ङ्घिनिसेवनत्थ-
मा'गम्म रम्मतरताधि'ह निस्सितो'व ।
पालेत्व'मूनि पदवापितरङ्गभङ्ग-
म'ङ्गीकरोन्ततनु वासुकि नागराजा ॥ ३१ ॥

अर्थ—स्वामी (भगवान् बुद्ध) के हँसने के समय कठोर बन्धनों से बाँधा हुआ होने से ही मानो बैठी हुई स्थिति को प्रकट करता हुआ (तथा) आवाज एवं गति में जीता जाने से ही मानो पंखों की क्रिया से रहित पैरों में स्थित हंस सभी जन-समूह की भव में जाने की प्रवृत्ति को रोके ॥२९॥

अन्वय—दिब्बसरसिं ओहाय अखिललोकसब्बरम्मङ्घिवापिं अवगाहितवा इव मनसाभिरूळ्हे पादे (ठितो) एरावणो करिवरो जन्तुं पुरिन्दपुरं सीघं एव नयतं ।

अर्थ—दिव्य तालाब को छोड़कर सभी मनुष्यों को पूर्ण रूप से रमणीय पादरूपी वापिका में डुबकी लगानेवाला मनोहर पैर में स्थित ऐरावण गजराज प्राणी को शीघ्र ही इन्द्र-नगर में ले जाए ॥३०॥

अन्वय—सकं भवनं हित्वा अङ्घिनिसेवनत्थमागम्म रम्मतरताय इह एव निस्सितो पदवापितरङ्गभङ्गं अङ्गीकरोन्ततनु वासुकि नागराजा अमूनि पालेतु ।

अर्थ—अपने भवन को छोड़कर (भगवान् बुद्ध के) पैरों की पूजा के लिए आकर अधिक रमणीय होने के कारण यहीं बसनेवाले (तथा) पैररूपी वापिका की तरङ्ग की कुटिलता को शरीर में स्वीकार करनेवाले वासुकि नागराज इन (प्राणियों) का पालन करे ॥३१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाथस्स कञ्चनसिखावलजातिलील-
मा'वीकरं'व पदनिस्सितमोरराजा ।
तं धम्मदेसनरवेनि'व लुद्दकस्स
लोकस्स पापफणिनो हनतं असेसं ॥ ३२ ॥

संसारसागरगते सधने जने ते
नेतं पदे कलचतुम्मुखहेमनावा ।
निब्बाणपत्तनवरं भरुकच्छकन्तं
सुप्पारपण्डितगता विय आसु नावा ॥ ३३ ॥

सम्बोधिञाणपरिपाचयतो मुनिस्स
भूतो यथा हिमवतद्दि समाधिहेतु ।

अन्वय—कञ्चनसिखावलजातिलीलं आवीकरं इव नाथस्स पदनिस्सितमोरराजा धम्मदेसनरवेन लुद्दकस्स इव लोकस्स पापफणिनो असेसं हनतं ।

अर्थ—सोने के मयूरों के समूह की लीला को प्रकट करते हुए की तरह नाथ (भगवान् बुद्ध) के पैरों में आश्रित मयूरराज धर्मोपदेश के शब्द से लुब्धक (अंगुलिमाल) की तरह लोक के (समस्त) पापरूपी सर्पों का सम्पूर्ण रूप से हनन करे ॥३२॥

अन्वय—सुप्पारपण्डितगता नावा विय ते पदे (निस्सिता) कलचतुम्मुखहेमनावा संसारसागरगते सधने जने भरुकच्छकन्तं निब्बाणपत्तनवरं आसु नेतं ।

अर्थ—सुप्पारपण्डित द्वारा प्रयुक्त नौका की तरह तुम्हारे पैर में (आश्रित) सुन्दर चार मुख (पतवार) वाली स्वर्ण नौका संसार सागर में स्थित सधन (योग्य) मनुष्यों को भरूकच्छ के समान सुन्दर निर्वाण रूपी श्रेष्ठ नगर में शीघ्र ले जाए ॥३३॥

अन्वय—सम्बोधिञाणपरिपाचयतो मुनिस्स हिमवतद्दि यथा समाधिहेतु भूतो, एवं पादे (ठितो) हिमवद्दि मनेन भजतं सम्बोधिञाणपरिपाचनहेतु होतु ।

अर्थ—सम्बोधिज्ञान की पूर्णता को प्राप्त करने वाले मुनि के लिए जिस प्रकार हिमालय पर्वत समाधि में कारण हुआ, उसी प्रकार पैरों में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं मनेन भजतं हिमवद्दि पादे
सम्बोधिञाणपरिपाचनहेतु होतु ॥ ३४ ॥
दळ्हं पराजिततया मुनिना सरेन
सुञ्ञस्सरो'पगतपञ्जरबन्धनो'व ।
सो पादपञ्जरगतो करवीकपक्खी
सब्बेसम'प्पियवचं जहता भवन्तं ॥ ३५ ॥
ते चक्कवाकमकरा अपि कोञ्ञजीव-
ञ्जीवादिपक्खिविसरा सरसी'व भुत्तं ।
वेस्सन्तरेन ,चरणम्बुजि निब्भजन्ता
जन्तू तहिं विय पदे सुरमेन्तु निच्चं ॥ ३६ ॥
तं चन्दकिन्नरगतिं'व गतस्स बोधि-
सत्तस्स तस्स सपजापतिकस्स भावं ।

(स्थित) हिमालय (बुद्ध की) मन से भक्ति करनेवालों के लिए सम्बोधिज्ञान की पूर्णता में कारण हो ॥३४॥

अन्वय—मुनिना सरेन दळ्हं पराजिततया सुञ्ञस्सरोपगतपञ्जरबन्धनो-व पादपञ्जरगतो सो करवीकपक्खी भवन्तं सब्बेसं अप्पियवचं जहता (जहतु)।

अर्थ—मुनि (बुद्ध) के द्वारा स्वर से निश्चित रूप से पराजित हो जाने से शून्यस्वर होकर पिंजड़े के बन्धन में पहुँचे हुए के समान पैररूपी पिंजड़े में स्थित वह कोयल पक्षी आप सबके अप्रिय वचनों का हरण करे ॥३५॥

अन्वय—ते चक्कवाकमकरा कोञ्ञजीवञ्जीवादिपक्खिविसरा अपि सरसीव भुत्तं (सरसिव मुक्त्वा) वेस्सन्तरेन चरणम्बुजि निब्भजन्ता (अहेसुं), तहिं विय जन्तू निच्चं पदे सुरमेन्तु।

अर्थ—(जिस प्रकार) वे चकवा, मकर (समुद्री मछली), कुरर तथा चकोर आदि पक्षी-समूह भी तालाब को छोड़कर वेस्सन्तर के चरण रूपी कमल में सन्तुष्ट (थे) उसी प्रकार प्राणी सदैव (बुद्ध के) पैरों में अच्छी तरह से रमण (भक्ति) करें ॥३६॥

अन्वय—तं चन्दकिन्नरंगतिं गतस्स तस्स सपजापतिकस्स बोधि-सत्तस्स भावं संसूचयन्तपदकिन्नरकिन्नरी वे सामग्गिमग्गपटिपत्तिसु पापयन्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसूचयन्तपदकिन्नरकिन्नरी वे
सामग्गिमग्गपटिपत्तिसु पापयन्तु ॥ ३७ ॥

सं राजधानिमु'सभो वहत'ग्गभारं
पीतिप्पयो पजनयेय्य सवच्छधेनु ।
सस्सेविनो अभिरमेन्तु छ कामसग्गा
धारेन्तु झायिमि'ह सोळस धातुधामा ॥ ३८ ॥

सुत्वा जिनस्स करवीकसरं मनुञ्ञं
अञ्ञोञ्ञभीतिरहिता अपि पच्चनीका ।
हित्वा गतिं विय ठिता पदसत्तरूपा
सब्बं भवस्सितजनान गतिं हनन्तु ॥ ३९ ॥

अर्थ—चन्दकिन्नर गति में पहुँचे हुए पत्नी सहित बोधिसत्त्व के अस्तित्व को सूचित करने वाले पैरों में स्थित किन्नर तथा किन्नरी निश्चय से (भक्तों को) पूर्ण (आर्य अष्टाङ्गिक) मार्ग के ज्ञान की प्राप्त करायें ॥३७॥

अन्वय—उसभो सं राजधानिं अग्गभारं वहतु, सवच्छधेनु पीतिप्पयो पजनयेय्य, छ कामसग्गा सस्सेविनो अभिरमेन्तु, सोळस धातुधामा इह झायिं धारेतु ।

अर्थ—(पैर में स्थित) बैल (का चिह्न) उत्तम राजधानी में ले जाने के लिए श्रेष्ठ (भक्तों का) भार वहन करे । बछड़े सहित गाय प्रीति रूपी दूध को दे, छः काम-स्वर्ग अपने (बुद्ध के) सेवकों को प्रसन्न करें, सोलह धातुधाम इस संसार में ध्यानी की रक्षा करें ॥३८॥

अन्वय—जिनस्स मनुञ्ञं करवीकसरं सुत्वा पच्चनीका अपि अञ्ञोञ्ञभीतिरहिता गतिं हित्वा ठिता विय पदसत्तरूपा भवस्सितजनान सब्बं गतिं हनन्तु ।

अर्थ—जिन (बुद्ध) के मनोज्ञ कोयल के समान स्वर को सुनकर शत्रु भी एक-दूसरे के भय से रहित होकर गति (भव-गमन) को छोड़कर ठहरे हुए के समान पैरों में स्थित प्राणियों के चिह्न भव (संसार) के आश्रित रहने वाले मनुष्यों की समस्त गति को समाप्त करें ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोवण्णकाहळ्युगोपममि'न्दिराय-
सन्नीरपुप्फमुकुलोपममु'स्सवाय ।
निच्चं सुसज्जठपितं मुनि तिट्ठतं ते
जङ्घाद्वयं जनविलोचनमङ्गलाय ॥ ४० ॥

लक्ख्या विलासमुकुरद्वयसन्निकासं
ताडङ्कमण्डनविडम्बकमं'सुसण्डं ।
जानुद्वयं ललितसागरबुब्बुलाभं
होतं जगत्तयनिजत्त विभूसितु' ते ॥ ४१ ॥

छद्दन्तिदिन्नवरदन्तयुगोपमाना
तं हत्थिसोण्डकमपुण्णगुणा तवो'रू ।

अन्वय—(हे) मुनि ! ते सोवण्णकाहळ्युगोपमं इन्दिरायसन्नीरपुप्फमुकुलोपमं जङ्घाद्वयं उस्सवाय जनविलोचनमङ्गलाय निच्चं सुसज्जठपितं तिट्ठतं ।

अर्थ—(हे) मुनि ! तुम्हारी सोने की लौकी के जोड़े के समान (तथा) नील कमल एवं सन्नीर पुष्पों की कलियों के समान दोनों जांघें (भक्तों के) उत्सव के लिए (तथा) मनुष्यों के दृष्टि-मङ्गल के लिए सदैव तैयार रहें ॥४०॥

अन्वय—लक्ख्या विलासमुकुरद्वयसन्निकासं, ताडङ्कमण्डनविडम्बकमंसुसण्डं, ललितसागरबुब्बुलाभं ते जानुद्वयं जगत्तयनिजत्त विभूसितुं होतं।

अर्थ—लक्ष्मी के दो प्रसाधन दर्पणों (या क्रीड़ा-कलियों) के समान, कान के आभूषण का अनुकरण करने वाले, मांस-पिण्ड वाले तथा सुन्दर समुद्र के बुलबुले के समान तुम्हारे दोनों घुटने तीन लोकों के (प्राणियों के) अपने स्वरूप (धार्मिक रूप) को सुशोभित करने के लिए हों ॥४१॥

अन्वय—छद्दन्तिदिन्नवरदन्तयुगोपमाना, हत्थिसोण्डकमपुण्णगुणा, लीलापयोधिसिरिकेलिसुवण्णरम्भाखन्धा व तवोरू जनानं परिपुण्णगुणे देन्तु।

अर्थ—छद्दन्त हाथी के द्वारा दिए गए उत्तम दांतों के जोड़े के समान, हाथी की सूंढ के समान पतलेपन से क्रमशः मोटे पन को प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लीलापयोधिसिरिकेलिसुवण्णरम्भा-
खन्धा'व देन्तु परिपुण्णगुणे जनानं ।। ४२ ।।
जङ्घक्खकद्वयसमप्पितचित्तपाद-
चक्कद्वयी मनमनोजहयो मुने ते ।
सोणीरथो सिरिवहो मनसा'भिरूळ्हं
लोकत्तयं सिवपुरं लहु पापयातु ।। ४३ ।।
रम्मोरपाकटतटाकतटासवन्त-
रोमावलीजलपणालिककोटिकट्ठा ।
नाभी गभीरसरसोसिरिकेळिता ते
सस्सेविनं व्यसनघम्ममम'लं समेतु ।। ४४ ।।
कन्तिच्छटालुळितरूपपयोधिनाभि-
आवट्टवट्टितनिमुज्जितसब्बलोको ।

(तथा) क्रीड़ा-समुद्र में लक्ष्मी की क्रीड़ा के (हेतुभूत) स्वर्ण केले के पेड़ के समान तुम्हारी जांघें मनुष्यों के लिए सभी गुणों को दें ।।४२।।

अन्वय—(हे) मुने ! ते जङ्घक्खकद्वयसमप्पितचित्तपादचक्कद्वयी मनमनोजहयो सिरिवहो सोणीरथो लोकत्तयं मनसाभिरूळ्हं सिवपुरं लहु पापयातु ।

अर्थ—हे मुनि ! तुम्हारा दो जंघाओंरूपी धुरियों में लगे हुए अद्भुत पैररूपी दो चक्रोंवाला, मनरूपी सुन्दर घोड़ेवाला तथा लक्ष्मी को वहन करनेवाला कटि-रथ तीन लोकों को मन-भाये शिवपुर (निर्वाण) में शीघ्र पहुँचाये ।।४३।।

अन्वय—ते रम्मोरपाकटतटाकतटासवन्तरोमावलीजलपणालिककोटिकट्ठा गभीरसरसीसिरिकेळिता नाभी सस्सेविनं अलं व्यसनघम्मं समेतु ।

अर्थ—रम्य -वक्षस्थलरूपी स्वाभाविक सरोवर के किनारे से बहनेवाली रोमावलीरूपी जल की नाली के अन्त में स्थित (तथा) गम्भीर वापिका के सौन्दर्य को धारण करनेवाली समान तुम्हारी नाभि अपने सेवकों की सम्पूर्ण कष्टरूपी गर्मी को शान्त करे ।।४४।।

अन्वय—विवसो कन्तिच्छटालुळितरूपपयोधिनाभिआवट्टवट्टितनिमुज्जितसब्बलोको सोभग्गतोयनिवहं पिवित्वा लोकुत्तरादिसुखमुच्छिततं पयातु ।

२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोभग्गतोयनिवहं विवसो पिवित्वा
लोकुत्तरादिसुखमुच्छिततं पयातु ॥ ४५ ॥

गम्भीरचित्तरहदं परिपूरयित्वा
तं सन्दमानकरुणम्बुपवाहतुल्या ।
रोमालिवल्लि हरिनाभिसुभालवाला
देतं लहुं सिवफलं भजतं मुने ते ॥ ४६ ॥

चारूरसारिफलको कुटिलग्गलोम-
पन्तीविभत्तिसहितो सिरिकेळिसज्जो ।
सग्गापवग्गसुखजूतककेळिहेतु
होतं तिलोकसुखजूतकसोण्डकानं ॥ ४७ ॥

अर्थ—असहाय (तथा) कान्तिरूपी छटा से क्षुब्ध रूपरूपी समुंद्र की नाभिरूपी भँवर में (फंस कर) चक्कर एवं डुबकी लगानेवाला समस्त लोक (आपके) सौभाग्यरूपी जल-राशि को पीकर लोकोत्तर सुख की प्रारम्भिक मूर्च्छा को प्राप्त करे ॥४५॥

अन्वय—(हे) मुने ! गम्भीरचित्तरहदं परिपूरयित्वा तं सन्दमानकरुणम्बुपवाहतुल्या हरिनाभिसुभालवाला ते रोमालिवल्लि भजतं लहुं सिवफलं देतं ।

अर्थ—हे मुनि ! गम्भीर चित्तरूपी तालाब को पूर्णकर उसके ऊपर बहनेवाली करुणारूपी जलधारा के समान तुम्हारी हरि (पीली) नाभिरूपी अच्छी क्यारीवाली रोमपंक्तिरूपी लता पूजनेवालों के लिए शीघ्र ही शिव (=निर्वाण) रूपी फल दे ॥४६॥

अन्वय—कुटिलग्गलोमपन्तीविभत्तिसहितो सिरिकेळिसज्जो चारूरसारिफलको तिलोकसुखजूतकसोण्डकानं सग्गापवग्गसुखजूतककेळिहेतु होतं ।

अर्थ—घुंघराले एवं छोटे रोमों की पंक्ति के विभाग से युक्त, लक्ष्मी की क्रीड़ा को तैयार सुन्दर वक्षस्थलरूपी शतरंज का फलक तीन लोकों के सुखरूपी जुए के नशे में लिप्त (मनुष्यों) के लिए स्वर्ग एवं निर्वाण के सुखरूपी जुए के खेल का कारण बने ॥४७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गम्भीरचित्तरहदोदरगाहमान-
मेत्तादयाकरिवधूकरसन्निकासा ।
सब्बङ्गिनं सिवफलं तनुदेवरुक्खे
साखासखा तव भुजा भजतं ददन्तु ॥ ४८ ॥
नीहारबिन्दुसहितग्गदलोपसोभि-
व्यालम्बरत्तपदुमद्वयभङ्गिभाजा ।
पापारिसीसलुनतेनि'व रत्तरत्ता
रत्ता करा तव भवुं भुवि मङ्गलाय ॥ ४९ ॥
रूपस्सिरीचरितचङ्कमविब्भमा ते
पिट्ठी यथा कललमुद्धनि सेतुभूता ।
एवं भवण्णवसमुत्तरणाय सेतु
होतं महाकनकसङ्कमसन्निकासा ॥ ५० ॥

अन्वय—गम्भीरचित्तरहदोदरगाहमानमेत्तादयाकरिवधूकरसन्निकासा तनुदेवरुक्खे साखासखा तव भुजा भजतं सब्बङ्गिनं सिवफलं ददन्तु ।

अर्थ—गम्भीर चित्तरूपी तालाब की गहराई में डूबी हुई मैत्री एवं करुणा रूपी गजवधुओं की सूढ के समान (तथा) शरीररूपी देव-वृक्ष (कल्पवृक्ष) में शाखा जैसी आपकी भुजाएं पूजनेवाले सभी प्राणियों को शिव-(=निर्वाण) फल दें ॥४८॥

अन्वय - नीहारबिन्दुसहितग्गदलोपसोभिव्यालम्बरत्तपदुमद्वयभङ्गिभाजा पापारिसीसलुनतेनिव रत्तरत्ता तव रत्ता करा भुवि मङ्गलाय भवुं ।

अर्थ—हिम-बिन्दु से युक्त, उत्तम पत्तों से सुशोभित, नीचे की ओर मुख किए हुए (लटके हुए) लाल कमल के जोड़े के रूप को धारण करने वाले तथा पापरूपी शत्रुओं के शिर काटने से ही मानो खून से लाल आपके लाल हाथ पृथ्वी पर मङ्गल के लिए हों ॥४९॥

अन्वय—रूपस्सिरीचरितचङ्कमविब्भमा ते पिट्ठी यथा कललमुद्धनि सेतुभूता, एवं महाकनकसङ्कमसन्निकासा भवण्णवसमुत्तरणाय सेतु होतं ।

अर्थ—रूपश्री (लक्ष्मी) के द्वारा किये गये गमन के कारण पर्यटन-स्थल के सौन्दर्यवाली तुम्हारी पीठ जिस प्रकार कीचड़ के ऊपर पुल स्वरूप (बनी थी) उसी प्रकार महान् कनक मार्ग के समान दिखने वाली (तुम्हारी पीठ) संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिए सेतु (पुल) बने ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्धम्मदेसनमनोहरभेरिनाद-
सञ्चारणे सिवपुरं विसितुं जनानं ।
गीवा सुवण्णमयचारुमुतिङ्गभेरी-
भावम्भजा भवतु भूतविभूतया ते ॥ ५१ ॥
लक्खीनिवसवदनम्बुजम'त्तनिन्नं
आकड्ढयं जनविलोचनचञ्चरीके ।
सोरब्भधम्ममकरन्दनिसन्दमानं
पीणेतु तेन सरसेन सुभाजने ते ॥ ५२ ॥
लक्खीसमारुहितवत्तरथे रथङ्ग-
द्वन्द्वानुकारि मिगराजकपोललीलं ।
ताडङ्कमङ्गलयुगं विय कण्णभाजं
गण्डत्थलद्वयम'लंकुरुतं जनत्ते ॥ ५३ ॥

अन्वय—जनानं सिवपुरं विसितुं सद्धम्मदेसनमनोहरभेरिनादसञ्चारणे सुवण्णमयचारुमुतिङ्गभेरीभावम्भजा ते गीवा भूतविभूतिया भवतु ।

अर्थ—मनुष्यों को शिवपुर (निर्वाण) में प्रविष्ट कराने के लिए सद्धर्म की देशना (उपदेश) रूप मनोहर भेरी के शब्द को फैलाने में स्वर्ण-मय सुन्दर मृदङ्ग एवं भेरी के रूप को धारण करनेवाली तुम्हारी ग्रीवा प्राणियों की विभूति के लिए हो ॥५१॥

अन्वय—जनविलोचनचञ्चरीके अत्तनिन्नं आकड्ढयं सोरब्भधम्ममकरन्दनिसन्दमानं ते लक्खीनिवासवदनम्बुजं तेन सुरसेन सुभाजने पीणेतु ।

अर्थ—मनुष्यों के नयनोंरूपी भ्रमरों को अपनी ओर आकर्षित करनेवाला (तथा) सुगन्धित धर्मरूपी पुष्परस को बहानेवाला तुम्हारा लक्ष्मी के निवासस्वरूप मुखरूपी कमल उस (अपने) अच्छे रस से सुभाजनों (सुपात्रों) को प्रसन्न करे ॥५२॥

अन्वय—लक्खीसमारुहितवत्तरथे रथङ्गद्वन्द्वानुकारि मिगराजकपोल-लीलं ताडङ्कमङ्गलयुगं विय कण्णभाजं गण्डत्थलद्वयं जनत्ते अलंकुरुतं ।

अर्थ—लक्ष्मी है सवार जिसमें ऐसे गोल रथ में रथाङ्ग (रथ के पहियों) का अनुकरण करनेवाला, सिंह के कपोल जैसे सौन्दर्यवाला तथा मङ्गल कर्णाभूषणों की तरह कानों को धारण करनेवाला गंडस्थलों का जोड़ा मनुष्यों के चित्तों को सुशोभित करे ॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लावण्णम'ण्णवपवाललताद्वयाभं
तं देहदेवतरुपल्लवकन्तिमन्तं ।
वत्तारविन्दमकरन्दपराजिसोभं
रत्ताधरद्वयम'धोकुरुतं जनाघं ॥ ५४ ॥

उण्णासकुन्तिगतमत्थकनत्थुकूप-
सुब्भूलकारसहितोट्ठपवाळनावा ।
गत्तुत्तरण्णवगता तव जन्तुकानं
होतं भवण्णवसमुत्तरणाय नाथ ॥ ५५ ॥

ईसंविकासपदुमोदरकेसरालि-
लीलाविनद्धरुचिरा तव दन्तपन्ति ।

अन्वय—लावण्णमण्णवपवाललताद्वयाभं देहदेवतरुपल्लवकन्तिमन्तं वत्तारविन्दमकरन्दपराजिसोभं तं रत्ताधरद्वयं जनाघं अधोकुरुतं ।

अर्थ—सौन्दर्यरूपी समुद्र में दो प्रवाल लताओं के समान, देहरूपी देववृक्ष की कोंपलों की कान्तिवाला तथा गोल (पूर्ण रूप से विकसित) कमल के केसर को पराजित करनेवाली शोभा से युक्त लाल ओंठों का जोड़ा मनुष्यों के पापों को तिरस्कृत करे (समाप्त करे) ॥५४॥

अन्वय—(हे) नाथ ! उण्णासकुन्तिगतमत्थकनत्थुकूपसुब्भूलकार-सहिता गत्तुत्तरण्णवगता तव ओट्ठपवाळनावा जन्तुकानं भवण्णवसमुत्त-रणाय होतं ।

अर्थ—हे नाथ ! ऊपरी सिरे पर बैठे हुए ऊर्णा (भौंहों के बीच की भँवरी) रूपी पक्षी समेत नाकरूपी कूपदण्ड तथा भौंरूपी लंगर से युक्त उत्तम शरीररूपी समुद्र में स्थित तुम्हारी ओंठरूपी प्रबाल की नाव प्राणियों को भवरूपी समुद्र पार करने के लिए हो ॥५५॥

अन्वय—ईसंविकासपदुमोदरकेसरालिलीलाविनद्धरुचिरा वानीवधू-धरितमालतिमाल्यतुल्या तव दन्तपन्ति तस्स जनस्स मनरञ्जनं आचरेय्य ।

अर्थ—अधखिले कमल के भीतर स्थित केसर की पङ्क्ति के ढके सौन्दर्य के समान आकर्षक तथा सरस्वती द्वारा धारण की गई मालती की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वानीवधूधरितमालतिमाल्यतुल्या
तस्सं जनस्स मनरञ्जनमा'चरेय्य ॥ ५६ ॥

सद्धम्मनिज्झरसुरत्तसिलातलाभा
जिव्हा वचीनटवधूकलरङ्गभूता ।
सद्धम्मसेट्ठतरणी निहितप्पिया ते
संसारसागरसमुत्तरणाय होतु ॥ ५७ ॥

दन्तंसुकञ्चुकितरत्तधरोपधाने
जिव्हासुरत्तसयने मुखमन्दिरट्ठे ।
आमोक्खमुत्तिवधुया सयिताय तुय्हं
कुब्बन्तु सङ्गमम'लं जनसोतुकामि ॥ ५८ ॥

उण्णा तथा'भिनवपत्तवराभिरामा
लीलोल्लसन्तभमुकद्वयनीलपत्ता ।

माला के समान तुम्हारी दाँतों की पङ्क्ति उस (तुम्हारे भक्त) मनुष्य का मनोरञ्जन करे ।।५६।।

अन्वय—सद्धम्मनिज्झरसुरत्तसिलातलाभा वचीनटवधूकलरङ्गभूता सद्धम्मसेट्ठतरणीनिहिता ते पिया जिव्हा संसारसागरसमुत्तरणाय होतु ।

अर्थ—सद्धर्मरूपी झरने में (स्थित) अत्यन्त लाल शिलातल के समान, (तथा) वाणीरूपी नटवधू के उत्तम रङ्गमञ्च के समान, सद्धर्म की श्रेष्ठ नौका (रूपी मुख) में स्थित तुम्हारी प्यारी जीभ संसाररूपी समुद्र को पार करने के लिए हो ।।५७।।

अन्वय—तुय्हं दन्तंसुकञ्चुकितरत्तधरोपधाने जिव्हासुरत्तसयने मुखमन्दिरट्ठे सयिताय आमोक्खमुत्तिवधुया जनसोतुकामि अलं सङ्गमं कुब्बन्तु ।

अर्थ—तुम्हारे दाँतों की किरणोंरूपी आवरण (खोली) से ढके हुए लाल ओंठरूपी तकिये तथा जिह्वारूपी अत्यन्त लाल शय्यावाले मुख रूपी घर में सोई हुई श्रेष्ठ मुक्तिरूपी वधू के साथ (तुम्हारे उपदेशों को) सुनने के इच्छुक मनुष्य पूर्ण संगम करें ।।५८।।

अन्वय—उण्णाअभिनवपत्तवराभिरामा लीलोल्लसन्तभमुकद्वयनील-पत्ता तथा वदनालवाला घानोरुचारुकदली जनमङ्गलाय चिरं पवत्ततु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घानोरुचारुकदली वदनालवाला
तुम्हं पवत्ततु चिरं जनमङ्गलाय ॥ ५९ ॥

बालत्थलीहरिसिलातलपिट्ठिकट्ठ-
भूवल्लरिद्वयमयूरयुगस्स तुम्हं ।
पञ्चप्पभारुचिरपिच्छयुगस्सिरीकं
नेत्तद्वयं मनसि पुञ्छतु पापधूलिं ॥ ६० ॥

इन्दीवरान्तगतभिङ्गिकपन्तिभङ्गि-
पञ्चम्बुजस्सरतते विय गच्छपन्ती ।
नेत्तम्बुजस्सिरितिरोकरणी'व तुम्हं
पम्हावली सिरिगते'ह तिरोकरोतु ॥ ६१ ॥

अर्थ—ऊर्णारूपी अभिनव तथा उत्तम पत्तों से सुन्दर, क्रीड़ा से कम्पित दो भौं रूपी नीले पत्तों तथा मुख रूपी क्यारी वाली नाकरूपी विशाल एवं सुन्दर कदली (केले का पौधा) मनुष्यों के मङ्गल के लिए चिरकाल तक रहे ॥५९॥

अन्वय—बालत्थलीहरिसिलातलपिट्ठिकट्ठभूवल्लरिद्वयमयूरयुगस्स पञ्चप्पभारुचिरपिच्छयुगस्सिरीकं तुम्हं नेत्तद्वयं मनसि पापधूलिं पुञ्छतु।

अर्थ—बालों की भूमि (शिर) पर विद्यमान पीले शिलातल (रूपी ललाट) पर स्थित दो लता जैसी भौंहों रूपी मयूर-जोड़े की पाँच प्रभाओं से रुचिर पूँछों के जोड़े के सौन्दर्य को धारण करनेवाले तुम्हारे दोनों नेत्र (मनुष्यों के)मन में (स्थित) पापरूपी धूलि को पोंछें (साफ करें) ॥६०॥

अन्वय—इन्दीवरान्तगतभिङ्गिकपन्तिभङ्गिपञ्चम्बुजस्सरतटे गच्छपन्ती विय नेत्तम्बुजस्सिरितिरोकरणीव तुम्हं पम्हावली इह सिरिगता तिरोकरोतु ।

अर्थ—नील कमल के अन्दर जानेवाली भ्रमर-पंक्ति के रूप को धारण करनेवाली, पाँच प्रकार के कमलों के सरोवर के किनारे पर (फूलों के) गुच्छों की पंक्ति जैसी तथा नेत्रोंरूपी कमलों की शोभा को ढकती हुई-सी तुम्हारी वरौनी यहाँ (भक्तों की) शोभाहीनता को समाप्त करे अर्थात् शोभायुक्त बनाये) ॥६१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वत्तुल्लसम्बुजविलोचनहंसतुण्ड-
कञ्जंसुपिञ्जरमुळाललताद्वयाभं ।
दोलाद्वयं स सवणद्वयमत्तलक्ख्या
होतं तवज्ज जनतामतिचारहेतु ॥ ६२ ॥

वम्मीकमत्थकसयानकभूरिदत्त-
भोगिन्दभोगवलिविब्भममावहन्तो ।
घानोपरिट्ठित मुने तव तुण्णमुण्णा
तग्गाहिनो विय जनस्स ददातु वित्तं ॥ ६३ ॥

रूपिन्दिराय विजयेखिललोकरूपं
घाणोरुचारुपरिघोपरिबद्धसिद्धा ।

अन्वय—वत्तुल्लसम्बुजविलोचनहंसतुण्डकञ्जंसुपिञ्जरमुळाललताद्वयाभं अत्तलक्ख्या दोलाद्वयं स तव सवणद्वयं अज्ज जनतां अतिचारहेतु होतं ।

अर्थ—गोल एवं प्रफुल्ल नेत्ररूपी कमलों तथा हँसते हुए मुखरूपी कमल की किरणों से पीली दो मृणाल-लताओं के सौन्दर्य को धारण करने वाले तथा तुम्हारे रूपरूपी लक्ष्मी के दो झूलों की तरह तुम्हारे दो कान जनता के लिए (नास्तिकों के) अतिक्रमण में हेतु हों ॥६२॥

अन्वय—(हे) मुने ! वम्मीकमत्थकसयानकभूरिदत्तभोगिन्दभोगवलिविब्भमं आवहन्ती विय घानोपरिट्ठिता तव उण्णा तग्गाहिनो जनस्स तुण्णं वित्तं ददातु ।

अर्थ—हे मुनि ! वल्मीक के ऊपर सोने वाले भूरिदत्त सर्पराज की गोलाकृति के रूप को धारण करती हुई की तरह नाक के ऊपर स्थित आपकी ऊर्णा (दोनों भौंहों के बीच की भँवरी) उसमें जाने वाले (लीन होनेवाले) मनुष्य के लिए शीघ्र धन दे ॥६३॥

अन्वय—रूपिन्दिराय अखिललोकरूपं विजये घाणोरुचारुपरिघोपरिबद्धसिद्धा नीलाभवातविलुठन्तजयद्धजाभा ते भू दुरितारिजयाय सज्ज तिट्ठन्तु ।

अर्थ—लक्ष्मी के द्वारा सम्पूर्ण लोक के रूप को जीतने के समय (धारण की गई) नाकरूपी विशाल एवं सुन्दर डण्डे के ऊपर सफलता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीलाभवातविलुठन्तजयद्धजाभा
तिट्ठन्तु सज्ज दुरितारिजयाय ते भू ॥ ६४ ॥

उण्णस्सितोपलनिवेसितबुन्दसन्धि
घाणोरुपिण्डकम'घातप रुन्धितुं ते ।
होतं मुखम्बुजसिरीसिरसु'स्सिताभं
भूनीलपट्टिकललातसुवण्णछत्तं ॥ ६५ ॥

रूपङ्कवेदनविलोचनवानदिट्ठी
धारानिसानमणिवट्टसिरी सिरो ते ।
सिद्धामतो'सध कतञ्जनपुञ्जलक्खो
होतं जनस्स नयनामयनासनाय ॥ ६६ ॥

से बँधी हुई तथा नीले आकाश में हवा से फहराती हुई जयध्वजा के समान तुम्हारी भौंहें पापरूपी शत्रुओं को जीतने के लिए तैयार रहें ॥६४॥

अन्वय—ते मुखम्बुजसिरीसिरसुस्सिताभं भूनीलपट्टिकललातसुवण्ण-छत्तं उण्णस्सितोपलनिवेसितबुन्दसन्धिघाणोरुपिण्डकं अघातपं रुन्धितुं होतं ।

अर्थ—तुम्हारे मुखरूपी कमल की शोभा के ऊपर उठी हुई, भौंरूपी नीलो पट्टी से युक्त, ललाटरूपी सोने के छाते को धारण करने वाली (तथा) ऊर्णा के आश्रयभूत पत्थर के द्वारा चेहरे के जोड़ को स्थापित करने वाली नाकरूपी विशाल छज्जा पापरूपी धूप को रोकने के लिए हो ॥६५॥

अन्वय—रूपङ्कवेदनविलोचनवानदिट्ठी, धारानिसानमणिवट्ठसिरी, सिद्धामतोसधकतञ्जनपुञ्जलक्खी ते सिरो जनस्स नयनामयनासनाय होतं ।

अर्थ—सुन्दरता के चिह्न के अनुभव में हेतुभूत आंखों की चञ्चल दृष्टिवाला, धार युक्त पत्थर पर (घिसने से) बने गोल मणि की शोभा वाला तथा सफल अमृतरूपी दवा से बने अञ्जन-पुञ्ज की विशेषताओं वाला तुम्हारा शिर मनुष्य की आंखों के रोग को दूर करने के लिए हो ॥६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सक्खन्धबाहुयुगतोरणमज्झगीवा-
धारप्पितस्सिरिघटोपरिमु'स्सवाय ।
नीलुप्पला'व ठपिता सविभत्तिकं ते
केसा भवन्तु भुवनत्तयमङ्गलाय ॥ ६७ ॥

हेमग्घिये ठपित नीलसिलाकपाले
पज्जोतजालललितं मुनि सारयन्ती ।
रूपस्सिरीसिरसि भूसितहेममाला-
कारा करोतु सुभगं तव केतुमाला ॥ ६८ ॥

व्यामप्पभालि तव कञ्चनमोरकाले
सूरोदये विततचन्दकचक्कलक्खी ।

अन्वय—सक्खन्धबाहुयुगतोरणमज्झगीवाधारप्पितस्सिरिघटोपरिं उस्स-वाय ठपिता नीलुप्पला व सविभक्तिकं ते केसा भुवनत्तयमङ्गलाय भवन्तु ।

अर्थ—कन्धे समेत भुजाओं के जोड़ेरूप तोरण (मुख्य द्वार) के बीच ग्रीवा के आधार पर रखे हुए शिररूपी घड़े के ऊपर उत्सव के लिए स्थापित नील कमलों की भांति अच्छे विभाग से युक्त तुम्हारे बाल तीन लोकों के मङ्गल के लिए होवें ॥६७॥

अन्वय—(हे) मुनि ! हेमग्घिये नीलसिलाकपाले ठपितं पज्जोत-जालललितं सारयन्ती रूपस्सिरीसिरसिभूसितहेममालाकारा तव केतु-माला (भजतं जनानं) सुभगं करोतु ।

अर्थ—हे मुनि ! बहुमूल्य नील-शिलारूपी कपाल पर स्थापित दीप-समूहों के सौन्दर्य को चारों ओर फैलाती हुई तथा रूपश्री (लक्ष्मी) के सिर पर सुशोभित स्वर्ण माला के आकार वाली तुम्हारी प्रभा की माला (भक्त जनों के) सौभाग्य को करे ॥६८॥

अन्वय—तव कञ्चनमोरकाले सूरोदये विततचन्दकचक्कलक्खी मेघावनद्धसिखरुन्नतहेमसेले इन्दचापविकतीव ते अयं व्यामप्पभालि सोभं ददातु ।

अर्थ—तुम्हारे स्वर्ण मयूर के समय में सूर्योदय के समय फैली हुई मयूर-पुच्छ की गोलाई की विशेषतावाली तथा मेघों से ढकी हुई शिखर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेघावनद्धसिखरुन्नतहेमसेला'-
यं ति'न्दचापविकती'व ददातु सोभं ॥ ६९ ॥

पट्ठाय ते पणिधितो सुचिदानसील-
नेक्खम्मपञ्ञविरियक्खमसच्चधिट्ठा ।
मेत्ता उपेक्खि'ति इमे दस पूरतो'व
पूरेन्तु पारमिगुणा जनतानम'त्ते ॥ ७० ॥

पत्तुत्तरुत्तरदसापणिधानबीजा
चेतोदराजकरुणाजलसेकवुद्धा ।
सब्बञ्ञुञाणफलदा सतिवाडगुत्ता
तं सं फलं दिसतु पारमितालता ते ॥ ७१ ॥

वाले उन्नत मेरुपर्वत पर इन्द्र-धनुष के रूप की तरह तुम्हारी यह चारों ओर एक-एक हाथ फैली प्रभा की राशि (भक्तों को) शोभा प्रदान करे ॥६९॥

अन्वय—पणिधितो पट्ठाय व पूरतो ते सुचिदानसीलनेक्खम्मपञ्ञविरियक्खमसच्चधिट्ठामेत्ताउपेक्खति इमे दस पारमिगुणा जनतानमत्ते पूरेन्तु ।

अर्थ—प्रणिधि (बुद्ध होने की प्रार्थना) के समय से ही पूर्ण करने वाले तुम्हारे पवित्र दान, शील, नैष्क्रम्य, प्रज्ञा वीर्य, क्षमा, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री तथा उपेक्षा—ये दस पारमिताएंरूपी गुण मनुष्यों को (गुणों से) पूर्ण करें ॥७०॥

अन्वय—पत्तुत्तरुत्तरदसा पणिधानबीजा चेतोदराजकरुणाजलसेकवुद्धा सब्बञ्ञुञाणफलदा सतिवाडगुत्ता ते पारमितालता तं सं फलं दिसतु ।

अर्थ—(क्रमशः) उत्तरोत्तर (वृद्धि की) अवस्था को प्राप्त, संकल्प रूपी बीजवाली, चित्तरूपी मेघराज के करुणारूपी जल के सींचने से बढ़ी हुई, सर्वज्ञ के ज्ञानरूपी फल को देने वाली तथा स्मृतिरूपी घेरे से रक्षित तुम्हारी पारमितारूपी लता उस (निर्वाणरूपी) उत्तम फल को दे ॥७१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ बोधिपुण्णमिपदिट्ठदिनादितो ते
सम्भारकालसितपक्खकमाभिवुद्धो ।
सम्पुण्णपारमिगुणामतरंसि तं'व
सब्बङ्गिकुन्दकुमुदानि पबोधयेय्य ॥ ७२ ॥

आ पच्छिमब्भवसिवप्फललाभदाना
दानप्पबन्धम'पि दानफलप्पबन्धं ।
संवड्ढयि त्वम'भिपत्थनतो यथे'वं
जन्तु'त्तरुत्तरफलं खलु सम्भुजन्तु ॥ ७३ ॥

आरम्भता पभुति याव तव'ग्गमग्गा
विक्खालितग्घकलुसं सुचिसीलतोयं ।

अन्वय—ते पदिट्ठदिनादितो आ बोधिपुण्णमि सम्भारकालसित-पक्खकमाभिवुद्धो सम्पुण्णपारमिगुणामतरंसि तं व सब्बङ्गिकुन्दकुमुदानि पबोधयेय्य ।

अर्थ—तुम्हारे (विषय में दीपङ्कर बुद्ध द्वारा की गई भविष्यवाणी के) निश्चित दिन से बोधि पूर्णिमा तक (बुद्धत्व प्राप्ति की) तैयारी-कालरूपी शुक्ल पक्ष में क्रम से बढ़नेवाले तथा सम्पूर्ण पारमिता-गुणोंरूपी अमृत किरणोंवाले तुम ही समस्त प्राणियोंरूपी कुन्द-कुमुदों को प्रफुल्लित करो ॥७२॥

अन्वय—यथा त्वं अभिपत्थनतो आ पच्छिमब्भवसिवप्फललाभदाना दानप्पबन्धं दानफलप्पबन्धं अपि संवड्ढयि, एवं खुल जन्तु उत्तरुत्तरफलं सम्भुजन्तु ।

अर्थ—जिस प्रकार तुमने (बुद्धत्व-प्राप्ति के) संकल्प से लेकर अन्तिम भव में निर्वाणरूपी फल की प्राप्ति के लिए अपने को अर्पण करने तक दान की परम्परा को तथा दान के फल की परम्परा को भी बढ़ाया, उसीप्रकार प्राणी (दान के) उत्तरोत्तर फल का उपभोग करें ॥७३॥

अन्वय—आरम्भताप्पभुति याव तवग्गमग्गा विक्खालितग्घकलुसं मेत्तादयामधुरसीतलतायुपेतं एतं सुचिसीलतोयं भवनिस्सितजन्तुं त्वं व सोधेतु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेत्तादयामधुरसीतलतायु'पेतं
सोधेतु त्वं'व भवनिस्सितजन्तुमे'तं ॥ ७४ ॥

आ पच्छिमत्तम'भिनिक्खमनाभियोगा
पट्ठाय तं पभवतो परिपुण्णगेहा ।
त्वं सब्बजातिगहतो अपि निक्खमित्थो
एवं जना भवदुखा खलु निक्खमन्तु ॥ ७५ ॥

एकग्गतोपलतले निसिता चिरं धि-
धारा सुचित्तु'सुतले सतिदण्डबद्धे ।
निब्बिज्झि लक्खणधनुट्ठिति सन्तिलक्खं
खित्ता तयोनम'नुबिज्झतु जन्तुखित्ता ॥ ७६ ॥

अर्थ—(बुद्धत्व-प्राप्ति के उद्योग को) प्रारम्भ करने से लेकर तुम्हारे उत्तम मार्ग पर आरूढ़ होने तक पापरूपी कलुषता या गन्दगी को धोने वाले (तथा) मैत्री एवं दया की मधुरता एवं शीतलता से युक्त पवित्र शीलरूपी जल संसार में आसक्त प्राणी को तुम्हारे समान शुद्ध करे ॥७४॥

अन्वय— त्वं सब्बजातिगहतो पट्ठाय आ पच्छिमत्तं पभवतो परिपुण्ण-गेहा अपि अभिनिक्खमनाभियोगा निक्खमित्थो । एवं खलु जना भवदुखा निक्खमन्तु ।

अर्थ – तुम समस्त जाति (जन्म) रूपी घर से लेकर अन्तिम जन्म तक उत्पत्तिस्थानरूप सम्पन्न घर से भी अभिनिष्क्रमण के अभ्यास से निष्क्र-मण को चाहने वाले रहे हो । इसी प्रकार समस्त मनुष्य भवरूपी दुःख से निकलने वाले हो ॥७५॥

अन्वय—चिरं एकग्गतोपलगते सतिदण्डबद्धे सुचित्तुसुतले लक्खण-धनुट्ठिति निसिता धिधारा सन्तिलक्खं निब्बिज्झि । (सा धिधारा) जन्तुखित्ता तयोनं खित्ता अनुविज्झतु ।

अर्थ—एकाग्रतारूपी पत्थर के ऊपर चिरकाल से पैनी की गई, स्मृतिरूपी दण्ड में बद्ध एवं उत्तम चित्तरूपी वाणतल में (स्थित) लक्षण रूपी धनुष पर विद्यमान (तुम्हारी जिस) पैनी प्रज्ञा की धारा ने शान्ति रूपी लक्ष्य का भेदन किया है, वही प्रज्ञा की धारा जो (मिथ्या-दृष्टि आदि अन्धकार से ग्रस्त) भक्त हैं उनके अन्धकार को दूर करे ॥७६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वं पारमीजलनिधिं चतुरो'ह बाहू-
सत्तीहि सुत्तरि चिरं जनको'व सिन्धुं ।
सम्पन्नविक्कमफलो'सि यथा च सो'व
एवं जना विरियतप्फलमे'धयन्तु ॥ ७७ ॥

सत्तापराधदहने सुचिरं सुधन्तं
खन्ती सुवण्णकतरूपसमन्तिमन्ता ।
सब्बापराधम'सही त्वम'सय्हमे'वं
सब्बे जना पि खमनेन भजन्तु सन्ति ॥ ७८ ॥

लक्खाधिकं चतुरसङ्खियकप्पकालं
सच्चेन सुट्ठु परिभावितवाचिनो ते ।

अन्वय—चतुरो त्वं (यथा) इह चिरं बाहुसत्तीहि जनको सिन्धुं व पारामीजलनिधिं सुत्तरि, यथा च सो व (त्वं) सम्पन्नविक्कमफलोसि, एवं जना विरियतप्फलं एधयन्तु ।

अर्थ—चतुर तुमने यहाँ (संसार में) बाहुबल से बहुत समय तक (संघर्ष कर) पारमितारूपी समुद्र को पार किया है (जिस प्रकार) जनक ने समुद्र को (पार किया था) और इससे जिस प्रकार उस (जनक) की तरह तुम विक्रम के फल से सम्पन्न हो, उसी प्रकार मनुष्य वीर्य (पारमिता) के फल को प्राप्त करें ॥७७॥

अन्वय—सत्तापराधदहने सुचिरं सुधन्तं सुवण्णकतरूपसमन्तिमन्ता खन्ती (याय) त्वं असय्हं सब्बापराधं असही, एवं सब्बे जना पि खमनेन सन्ति भजन्तु ।

अर्थ—प्राणियों के अपराधरूपी आग में बहुत काल से जलने के कारण सुवर्ण के रूप को प्राप्त (आपकी मानसिक शान्तिरूपी) क्षान्ति है, (जिससे) तुमने असह्य समस्त अपराधों को सहा है। उसी प्रकार समस्त मनुष्य सहनशक्ति से शान्ति को प्राप्त करे ॥७८॥

अन्वय—लक्खाधिकं चतुरसङ्खियकप्पकालं सच्चेन सुट्ठुपरिभावितवाचिनो ते सच्चफुसिताय वाचाय जन्तू समेन्ति। एवं जनता विसुद्धवचना भवन्तु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाचाय सच्चफुसिताय समेन्ति जन्तू
एवं विसुद्धवचना जनता भवन्तु ॥ ७९ ॥

आदिन्नधम्ममहियत्थिरसुप्पतिट्ठा-
धिट्ठानपारमि महावजिरद्दि तुय्हं ।
सत्तेन केन पि यथा हि अभेज्जनेज्जो
एवं जना पि कुसलेसु अधिट्ठहन्तु ॥ ८० ॥

त्वं सब्बसत्तचिरभावितमेत्तचित्त-
तोयेहि संसमितकोधमहाहुतासो ।
लोकु'त्तरं तदितरं हितमा'वहित्थो
एवं जनेसु जनता हितमा'वहन्तु ॥ ८१ ॥

अर्थ—चार असङ्खेय एक लाख कल्प काल से सत्य के द्वारा ठीक से साधी गई वाणीवाले तुम्हारी सत्य से युक्त वाणी से प्राणी शान्ति को प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे ही जनसमूह विशुद्ध वचनोंवाला हो ॥७९॥

अन्वय—तुय्हं आदिन्नधम्ममहियात्थिरसुप्पतिट्ठाधिट्ठानपारमिमहा-वजिरद्दि यथा हि केन पि सत्तेन अभेज्जनेज्जो, एवं जना पि कुसलेसु अधिट्ठहन्तु ।

अर्थ—तुम्हारी प्राप्तविशेषताओंरूपी पृथ्वी पर स्थित एवं सुप्रतिष्ठित अधिष्ठान पारमितारूपी महान् वज्र पर्वत जिसप्रकार किसी भी प्राणी से अभेद्य है, उसी प्रकार प्राणी भी कुशल धर्मों में सुस्थिर हों ॥८०॥

अन्वय—सब्बसत्तचिरभावितमेत्तचित्ततोयेहि संसमितकोधमहाहुतासो त्वं लोकुत्तरं तदितरं हितं आवहित्थो, एवं जनता जनेसु हितं आवहन्तु ।

अर्थ— समस्त प्राणियों में चिरकाल से विकसित मैत्री से परिपूर्ण चित्तरूपी जल से क्रोधरूपी महान् अग्नि को शान्त करनेवाले तुमने (मनुष्यों के प्रति) लोकोत्तर एवं लौकिक हित (की भावना) को उत्पन्न किया है। वैसे ही जनसमूह मनुष्यों में हित (की भावना) को उत्पन्न करें ॥८१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्तोपकारपटिपक्खजनापकारे
त्वं निब्बिकारमनसो चिरभावनाय।
पत्तो'सि लाभपभुतट्ठसुनिब्बिकारं
एवं जनानुनयकोपनुदा भवन्तु ॥ ८२ ॥

सम्पन्नहेतुविभवो तुसिते विमानं
युत्तं गुणेहि नवभिप्पदवी विमानं।
त्वं'वा'धिपारमि'धिरोहिनिया तिलोको
आरोहतू'भयसुखं पदवी विमानं ॥ ८३ ॥

त्वं वे रहंसि समबुज्झि यथा च सम्मा
सम्पन्नविज्जचरणो सुगतो'सि होन्तु।

अन्वय—चिरभावनाय मित्तोपकारपटिपक्खजनापकारे निब्बिकार-मनसो त्वं लाभपभुतट्ठसुनिब्बिकारं पत्तोसि, एवं जना अनुनयकोपनुदा भवन्तु।

अर्थ—चिर काल के अभ्यास से मित्र के उपकार एवं शत्रु के अपकार में विकारहीन मनवाले तुम ने लाभ, ऐश्वर्य एवं सुख में निर्विकार भाव को प्राप्त किया है, वैसे ही मनुष्य अनुनय एवं क्रोध को दूर करने वाले हों ॥८२॥

अन्वय—सम्पन्नहेतुविभवो त्वं नवभि गुणेहि युत्तं अधिपारमि-अधिरोहिनिया तुसिते विमानं वा पदवी विमानं (आरोहिसि) एवं तिलोको उभयसुखं पदवीं-विमानं आरोहतु।

अर्थ—हेतु-सम्पत्ति के जानकार तुम नव गुणों से युक्त पारमिता रूपी नसैनी से तुषित-विमान या पदवी-विमान पर चढ़े हो। वैसे ही तीन लोकों के प्राणी लौकिक एवं लोकोत्तर सुख से युक्त पदवी (तुषित) विमान पर चढ़ें ॥८३॥

अन्वय—त्वं वे रहंसि समबुज्झि, यथा च (त्वं) सम्मा बुज्झि सम्पन्न-विज्जाचरणो सुगतो असि लोकंविदो पुरिसदम्मसुसारथी असि, सत्था असि, भगवा असि तथेव जन्तु होन्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकंविदो पुरिसदम्मसुसारथी'सि
सत्था'सि बुज्झि भगवा'सि तथे'व जन्तु ॥ ८४ ॥

सच्चित्तभू निदहितं जनताय तुय्हं
कल्याणवण्णरतनण्णवजातिभिन्नं ।
दुक्खग्गिचोरजलु'पद्दुतजातिगेहे
तस्सा सुखं भवतु जीवितुमा'पदाय ॥ ८५ ॥

वाचा विचित्तवरतन्तुगत'ङ्गिकण्ठे
स्वामुत्तसग्गुणमहारतनावली ते ।
वेवण्णिय'त्तनिभवं सकलं पहाय
होतं जनस्स सिरिसङ्गममङ्गलाय ॥ ८६ ॥

अर्थ—तुमने निश्चयसे एकान्तमें बुद्धत्व प्राप्त किया है और जिस प्रकार तुम सम्यक् सम्बुद्ध, विद्या एवं आचरण से युक्त, सुगत, लोक के जानकार, पुरुष के दमन में अच्छे सारथि, शास्ता तथा भगवान् हो उसीप्रकार (समस्त) प्राणी हों ॥८४॥

अन्वय—दुक्खग्गिचोरजलुपद्दुतजातिगेहे जनताय तुय्हं निदहितं कल्याणवण्णरतनण्णवजातिभिन्नं सच्चित्तभू सुखं तस्सा आपदाय जीवितुं भवतु ।

अर्थ—दुःख, अग्नि, चोर एवं बाढ़ से पीड़ित जातिरूपी घरमें (रहनेवाली) जनता के द्वारा तुम्हारे पास रखा हुआ (जमा किया गया) सुन्दर वर्ण के रत्नों के समुद्र से उत्पन्न सुख से अत्यन्त भिन्न शुद्ध चित्त से उत्पन्न सुख उस (जनता) की आपत्ति काल में (सुख पूर्वक) जीवन के लिए हो ॥८५॥

अन्वय—विचित्तवरतन्तुगता आमुत्तसग्गुणमहारतनावली ते वाचा अङ्गिकण्ठेसु (तिट्ठतु) (सा) जनस्स अत्तनिभवं सकलं वेवण्णियं पहाय सिरिसङ्गममङ्गलाय होतं ।

अर्थ—विचित्र एवं उत्तम धागे में पिरोयी गयी तथा अपने उत्तम गुणों के रूप में धारण की गयी लम्बी रत्नावलीरूपी तुम्हारी वाणी भक्तों के गलों में रहे । (वह मालारूपी वाणी) मनुष्य के शरीर में उत्पन्न समस्त विवर्णता को हटाकर श्री-संगमरूपी मंगल के लिए हो ॥८६॥

३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं सग्गुणत्थवदहट्ठसुतिप्पनालि-
निस्सन्दमानगुणनीरनिपानतिन्ते ।
खेत्ते'त्तसञ्ञिनि जना कतलोमहंस-
बीजंकुरी कुसलसस्सफलं लभन्तु ॥ ८७ ॥

आपायिकप्पभुतिदुक्खनिदाघकाल-
सन्तापिता निखिललोकमनोकदम्बा ।
तं वण्णमेघफुसना हसनंकुरेहि
इद्धा भवन्तु मतिवल्लरिवेल्लिता ते ॥ ८८ ॥

हेतुद्दसाफलदसासमवट्ठितं तं
सब्बत्थसत्तहितमा'वहणेन सिद्धं ।
चिन्तापथातिगनुभावविभावनं ते
भूतानम'त्थु चरितब्भुतम'त्थसिध्या ॥ ८९ ॥

अन्वय—जना सग्गुणत्थवदहट्ठसुतिप्पनालिनिस्सन्दमानगुणनीरनिपानतिन्ते कतलोमहंसबीजंकुरी अत्तसञ्ञिनि खेत्ते तं कुसलसस्सफलं लभन्तु ।

अर्थ—मनुष्य (तुम्हारे) उत्तम गुणों के स्तवनरूपी तालाब में विद्यमान, कानरूपी प्रनाली से बहनेवाले, गुणरूपी जल के पान से गीले (तथा) प्राप्त लोमहर्षरूपी बीजांकुरवाले शरीररूपी खेत में उस उत्तम धान्य (निर्वाण) के फल को प्राप्त करें ।।८७।।

अन्वय—आपायिकप्पभुतिदुक्खनिदाघकालसन्तापिता निखिललोकमनोकदम्बा ते वण्णमेघफुसना हसनंकुरेहि इद्धा मतिवल्लरिवेल्लिता भवन्तु ।

अर्थ—नारकीय आदि दुःखरूपी ग्रीष्मकाल से सूखे समस्त लोक का मनरूपी कदम्ब तुम्हारे शब्दरूपी मेघ के वर्षण से प्रीतिरूपी अंकुरों से समृद्ध (होकर) मतिरूपी कोपलों से प्रकम्पित हों ।।८८।।

अन्वय—हेतुद्दसाफलदसासमवट्ठितं सब्बत्थ सत्तहितमावहणेन सिद्धं चिन्तापथातिगनुभावविभावनं ते तं चरितब्भुतं भूतानं अत्थसिध्या अत्थु ।

अर्थ—(पारमिता के अभ्यास काल में) हेतुदशा एवं (पारमिता के फल काल में) फलदशा की स्थितियों से युक्त, सर्वत्र प्राणियों के हितों को प्राप्त कराने में सिद्ध एवं विचारातीत प्रभाव की अनुभूति से युक्त तुम्हारा वह अद्भुत चरित प्राणियों को अर्थसिद्धि के लिए हो ।।८९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अङ्गारकासुम'भिलङ्घिय दानकाले
भत्तत्तनो पदपटिच्छकपङ्कजा च।
या तक्खणे तव पदे धटमु'ट्ठहित्वा
पङ्केरुहं सिवमधुं सरतं ददन्तु॥ ९० ॥

सच्चेन मच्छपतिवस्सितवस्सधारा
सत्ते दयाय तव वस्सितवस्सधारा।
गिम्हे जनस्स समयिंसु यथा तथा ता
धम्मम्बुवुट्ठि'व समेन्तु किलेसदाहे॥ ९१ ॥

छद्दन्तनागपतिना खमता'पराधं
छेत्वा करे ठपित दन्तवरा'व लुद्दं।

अन्वय—दानकाले अंगारकासुं अभिलंघिय यातक्खणे तव पदे (सु) धटं उट्ठहित्वा (ठिता) पदपटिच्छकपंकजा सरतं भत्तत्तनो पंकेरुहं सिवमधुं ददन्तु।

अर्थ—दानपारमिता को पूर्ण करते समय अंगारों की खाई को लांघकर जाते समय तुम्हारे पैरों में शीघ्रता से उत्पन्न होकर (स्थित) पैरों में विद्यमान कमल तुम्हारे स्मरणकरनेवाले भक्तों को कमल की निर्वाणरूपी मधु प्रदान करें॥९०॥

अन्वय—यथा सच्चेन मच्छपतिवस्सितवस्सधारा गिम्हे जनस्स (दाहे) समयिंसु, तथा तव सत्ते दयाय ता वस्सितवस्सधारा किलेसदाहे धम्मम्बुवुट्ठि इव समेन्तु।

अर्थ—जिस प्रकार सत्य (के प्रभाव) से मत्स्यराज द्वारा की गयी वर्षा की धारा ने ग्रीष्मकाल में मनुष्य की गर्मी को शान्त किया, उसी प्रकार तुम्हारी प्राणी में दया की वह बरसी वर्षा की धारा क्लेशरूपी दाह को धर्म रूपी जल वृष्टि (से तृष्णा) की तरह शान्त करे।९१॥

अन्वय—अपराधं खमता छद्दन्तनागपतिना छेत्वा लुद्दं करे ठपिता दन्तवरा इव लोके हिताय ठपिता तव सेट्ठा दन्तधातु जनं लहु सिवपुरं पापयन्तु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोके हिताय ठपिता तव दन्तधातु
सेट्ठा जनं सिवपुरं लहु पापयन्तु ॥ ९२ ॥

तं तेमियाख्ययतिनो'स्सममालकम्हि
ओकिण्णमुत्तकनकम्बुजविप्पकिण्णा ।
कारुञ्ञवारिदचुतोदकबिन्दुबन्धू
धातू समेन्तु तव जन्तुसुदुक्खदाहे ॥ ९३ ॥

रट्ठस्स अत्थचरणाय असम्मुखस्स
रामेन दिन्नतिणसङ्खतपादुका'व ।
भुत्ता तया चिरम'सम्मुखनागतस्स
लोकस्स अत्थम'नुतिट्ठतु पत्तधातु ॥ ९४ ॥

अर्थ—अपराध सहन करनेवाले छद्दन्त हस्तिराज के द्वारा काटकर शिकारी के हाथों में रखे गये उत्तम दांतों की तरह लोक में हित के लिये रखी गई तुम्हारी श्रेष्ठ दन्तधातु मनुष्य को शीघ्र शिवपुर (निर्वाण) प्राप्त कराये ॥९२॥

अन्वय—तेमियाख्ययतिनो अस्सममालकम्हि ओकिण्णमुत्तकनकम्बुज-विप्पकिण्णा कारुञ्ञवारिदचुतोदकबिन्दुबन्धू तव धातू जन्तुसुदुक्खदाहे समेन्तु ।

अर्थ—तेमिय नामक यति के आश्रम के मैदान में (रखी हुई) मोतियों एवं सुनहले कमलों से आच्छादित तथा कारुण्यरूपी मेघ से च्युत उदक बिन्दुओं की भांति तुम्हारी (दन्त) धातुएं प्राणियों की भयंकर दुःख-पीड़ा को शान्त करें ॥९३॥

अन्वय—असम्मुखस्स रट्ठस्स अत्थचरणाय रामेन दिन्नतिणसङ्खत-पादुका इव तया भुत्ता पत्तधातु असम्मुखनागतस्स लोकस्स चिरं अत्थं अनुतिट्ठतु ।

अर्थ—असम्मुख (आंखों से ओझल) राष्ट्र के लाभकारी आचरण के लिये राम के द्वारा दी गयी तृण निर्मित पादुका की तरह तुम्हारे द्वारा उपभुक्त पात्रधातु असम्मुख एवं अनागत लोक के दीर्घकालीन कल्याण के लिये होवे ॥९४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वुत्तो जनानमु'पदिस्स वराहरञ्ञा
सट्ठिं सहस्ससरदं विय ञायधम्मो।
आदेय्यहेय्यमु'पदिस्स तया पवुत्तो
धम्मो पवत्ततु चिरं जनताहिताय ॥ ९५ ॥

मारारिमद्दनहिताधिगमं करोता'-
भत्तो तया वरमहाजयबोधिराजा।
सग्गापवग्गहितहेतु जनस्स हन्त्वा
सब्बन्तरायमि'ह तिट्ठतु सुट्ठु सज्जो ॥ ९६ ॥

सामोदवण्णभजनी गुणमञ्जरी'यं
चर्यालताविकसिता तव सप्फलङ्गं।

अन्वय—सट्ठि सहस्ससरदं वराहरञ्ञा जनानं उपदिस्स वुत्तो ञाय-धम्मो विय आदेय्यहेय्यं उपदिस्स तया पवुत्तो धम्मो चिरं जनताहिताय पवत्ततु।

अर्थ—साठ हजार शरद् (वर्ष) तक (विद्यमान) वराह राजा द्वारा मनुष्यों के उद्देश्य से कहे गये न्यायधर्म की तरह उपादेय एवं हेय को आधार बनाकर तुम्हारे द्वारा कहा गया धर्म दीर्घकाल तक जन-समूह के हित के लिये प्रज्वलित रहे ।।९५।।

अन्वय—मारारिमद्दनहिताधिगमं करोता तया आभत्तो सग्गापवग्ग-हितहेतु वरमहाजयबोधिराजा जनस्स सब्बन्तरायं हन्त्वा इह सुट्ठु सज्जो तिट्ठतु।

अर्थ—मार शत्रु के मर्दन से उत्पन्न हितबोध को करनेवाले तुम्हारे द्वारा लाया हुआ तथा स्वर्ग एवं अपवर्ग (की प्राप्तिरूप) हित में हेतुभूत उत्तम, महान् एवं जयस्वरूप बोधिरूपी राजा मनुष्य के समस्त कष्टों को नष्टकर यहाँ (उसकी सहायता के लिए) अच्छी तरह से तैयार रहे ।।९६।।

अन्वय—सामोदवण्णभजनी सप्फलङ्गं चर्यालताविकसिता ओकिण्ण-चित्तमधुपे रसपीणयन्ती तव इयं गुणमञ्जरी भुवि मत्थकेहि संभाविता पवत्ततु।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओकिण्णचित्तमधुपे रसपीणयन्ती
सम्भाविता भुवि पवत्ततु मत्थकेहि ॥ ९७ ॥

सम्बुद्धसेलवलयन्तरजाननव्हा-
नोतत्ततो तिपथगा यतिसागरट्ठा ।
धम्मापगा सुतिवसोतरिते पुणन्ती
सम्भारसस्समि'ह वत्ततु पाचयन्ती ॥ ९८ ॥

पञ्ञाणकूपसितपग्गहवायुगाही
सद्धालकारसहिता सतिपोतवाहा ।
सम्पापयातु भवसागपारतीर-
सप्पत्तनं वरधने पतिपत्तिनावा ॥ ९९ ॥

अर्थ—सुगन्ध एवं सुवर्ण से युक्त, उत्तम फल (निर्वाण) की अंगभूत, चर्या रूपी लता पर विकसित (तथा) मँडराते हुए (भक्तों के) चित्तरूपी भ्रमरों को रसपान कराती हुई तुम्हारी यह गुणरूपी मञ्जरी (फूलों का गुच्छा) पृथ्वी पर (भक्तों के) मस्तिष्कों द्वारा सम्मानित होकर प्रज्वलित रहे ॥९७॥

अन्वय—सम्बुद्धसेलवलयन्तरजाननव्हानोतत्ततो यतिसागरट्ठा सुतिवसोतरिते पुणन्ती धम्मापगा तिपथगा इह सम्भारसस्सं पाचयन्ती वत्ततु ।

अर्थ—सम्बुद्धरूपी पर्वतीय घेरे में विद्यमान ज्ञानरूपी अनोतत्त नामक झील से (निकल कर) भिक्षुरूपी समुद्र तक बहनेवाली श्रुति-सीमा में आनेवालों को पवित्र करती हुई धर्म की सरितारूपी गंगा यहाँ (बोधि के) उपकरण (पारमिता) रूपी धान्य को पकाती हुई विद्यमान रहे ॥९८॥

अन्वय—पञ्ञाणकूपसितपग्गहवायुगाही सद्धालकारसहिता सतिपोतवाहा पतिपत्तिनावा भवसागरपारतीरसप्पत्तनं वरधने सम्पापयातु ।

अर्थ—प्रज्ञारूपी मस्तूल (पाल बाँधने का दंड) एवं संकल्परूपी रस्सी से बँधे पाल से वायु ग्रहण करनेवाली, श्रद्धारूपी लंगर से युक्त, स्मृति रूपी नाविक वाली प्रतिपत्ति (अष्टांगिक मार्ग) रूपी नौका (प्राणियों को) संसाररूपी समुद्र के उस पार विद्यमान (निर्वाणरूपी) शरणस्थल (बन्दरगाह) पर उत्तम धन के लिये पहुँचाये ॥९९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोज्झङ्गसत्तरतनाकरधम्मखन्ध-
गम्भीरनीरचयसासनसागरो सं
सो सील्यनन्ततनुवेठितञाणमन्थ-
सेलेन मन्थितवतं दिसता'मतं वे ॥ १०० ॥

वुत्तेन तेन विधिना विधिना ततो तं
लद्धानुभूतम'मतं'खिलदोसनासं ।
अच्चन्तरोगजरतामरणाभिभूतं
भूतं करोतु अमरं अजरं अरोगं ॥ १०१ ॥

सद्धम्मराजरविनिग्गतधम्मरंसि-
फुल्लो धुतङ्गदलसंवरकेसरालि ।

अन्वय—बोज्झङ्गसत्तरतनाकरधम्मखन्धगम्भीरनीरचयसासनसागरो, सो सं (सागरो) सील्यनन्ततनुवेठितञाणमन्थसेलेन मन्थितवतं वे अमतं दिसतु ।

अर्थ—बोध्यङ्गरूपी सात रतनों के समूहवाला एवं धर्मस्कन्ध (धर्मकाय) रूपी गहरे जलसमूहवाला तुम्हारा शासनरूपी समुद्र है, वह उत्तम समुद्र शीलरूपी शेषनाग (वासुकि) के शरीर से लपेटा हुआ ज्ञान रूपी मन्दर पर्वत के द्वारा मथनेवालों को निश्चय से अमृत प्रदान करे ।।१००।।

अन्वय—ततो तेन विधिना वुत्तेन विधिना लद्धानुभूतं अखिलदोसनासं तं अमतं अच्चन्तरोगजरतामरणाभिभूतं भूतं अरोगं अजरं अमरं करोतु ।

अर्थ—इसलिए उस (बुद्ध) के द्वारा ठीक प्रकार से कहे गये (अष्टांगिक) मार्ग के द्वारा प्राप्त एवं अनुभूत तथा समस्त दोषों को नष्ट करनेवाला वह अमृत असाध्य रोग, बुढ़ापा एवं मरण से पीड़ित प्राणियों के लिए अरोग, अजर एवं अमर करे ।।१०१।।

अन्वय—सद्धम्मराजरविनिग्गतधम्मरंसिफुल्लो धुतङ्गदलसंवरकेसरालि समाधिसक्किण्णिको सासनवापिजातो सङ्घारविन्दनिकरो समधुं दिसतु ।

अर्थ—सद्धर्मराज (अर्थात् बुद्ध)रूपी सूर्य से निकली हुई धर्मरूपी किरणों से विकसित, धुतङ्गरूपी पत्ते एवं संवररूपी केसर-पङ्क्ति से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सङ्घारविन्दनिकरो समधुं समाधि-
सक्किण्णिको दिसतु सासनवापिजातो ॥ १०२ ॥
आनन्दरञ्ञरतनादिमहायतिन्द-
निच्चप्पबुद्धपदुमप्पियसेविनङ्गी ।
बुद्धप्पियेन घनबुद्धगुणप्पियेन
थेरालिना रचितपज्जमधुं पिबन्तु ॥ १०३ ॥
इत्थं रूपगुणानुकित्तनवसा तं तं हितासंसतो
बुद्धानुस्सति वत्तिता इह यथा सत्तेसु मेत्ता च मे ।
एवं ताभि भवन्तरुत्तरतरा वत्तन्तु ता बोधि मे
संयोगो च धनेहि सन्तिहि भवे कल्याणमित्तेहि च ॥ १०४ ॥
इति पज्जमधु निट्ठितं

युक्त, समाधिरूपी उत्तम कर्णिकावाला तथा शासन (बुद्ध-शासन) रूपी वापिका (बावड़ी) में उत्पन्न संघरूपी कमल-समूह उत्तम मधु प्रदान करे ॥१०२॥

अन्वय—आनन्दरञ्ञरतनादिमहायतिन्दनिच्चप्पबुद्धपदुमप्पियसेविनङ्गी घनबुद्धगुणप्पियेन बुद्धप्पियेन थेरालिना रचितपज्जमधुं पिबन्तु ।

अथ—आनन्दवनरतन आदि महायतीन्द्रोंरूपी सतत् प्रबुद्ध प्रिय कमलों का सेवन करनेवालों में प्रमुख (एवं बुद्ध के अन्य भक्त) बुद्धगुणों से अत्यन्त अनुरागकरनेवाले बुद्धप्रिय नामक स्थविररूपी भ्रमर द्वारा रचित पद्यमधु का पान करे ॥१०३॥

अन्वय—इत्थं रूपगुणानुकित्तनवसा तं तं हितासंसतो मे इह यथा बुद्धानुस्सति सत्तेसु च मेत्ता वत्तिता, एवं ताभि मे ता बोधि भवन्तरे उत्तरतरा वत्तन्तु (वत्ततु) धनेहि सन्तिहि (सन्तिया) कल्याणमित्तेहि च संयोगो भवे ।

अर्थ—इस प्रकार (बुद्ध के , रूप एवं गुण की प्रशंसा से तत्तद् हित की अभिलाषा से युक्त मेरी जिस प्रकार इस पृथ्वी पर बुद्धानुस्मृति और सभी प्राणियों में मित्रता है वैसे ही उन बुद्धानुस्मृति एवं सभी प्राणियों में मित्रता) से मेरी वह बोधि (बोधि-प्राप्ति की अवस्थाएं) दूसरे भव में और अधिक विकसित होकर विद्यमान रहे तथा (मेरा) धन, शान्ति एवं कल्याणमित्रों से संयोग हो ॥१०४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

बोधिनी

भगवान् बुद्ध के शरीर में विद्यमान बत्तीस महापुरुषलक्षणों को आधार बनाकर बुद्धप्रिय ने अपने 'पज्जमधु' नामक लघु स्तोत्र काव्य में बुद्ध के स्वरूप एवं गुणों का स्तवन किया है। कवि ने अपने इस ग्रन्थ में स्थविरवादी परम्परा का यथासम्भव अनुसरण किया है। इस स्तोत्र काव्य के प्रत्येक पद्य का अन्वय एवं हिन्दी अनुवाद यद्यपि इससे पूर्व प्रस्तुत किया जा चुका है तथापि अनुवाद में कतिपय परिभाषिक शब्दों का प्रयोग होने से, यत्रतत्र स्थविरवादी परम्परा का उल्लंघन होने से एवं व्याकरण की दृष्टि से कतिपय अप्रसिद्ध शब्दों के प्रयोग से कहीं-कहीं स्पष्टीकरण आवश्यक है। अतः इस 'बोधिनी' के सहारे अस्पष्ट स्थलों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

(१) 'देवतानां रूपं पादांगुष्ठप्रभृति वर्ण्यते, मानुषाणां केशादारभ्येति धार्मिकाः (मल्लिनाथ)—इस धार्मिकों की परम्परा का पालन करते हुए कवि ने भगवान् बुद्ध के स्वरूप का वर्णन पैरों की अंगुलियों पर स्थित नखपंक्ति से प्रारम्भ किया है।

ऊर्णा—दो भौंहों के बीच में विद्यमान श्वेत कोमल कपास जैसी रोम-राजी को ऊर्णा कहते हैं। इसकी तुलना स्वर्णफलक के मध्य विद्यमान रजत-बिन्दु, स्वर्णघट से निकलने वाली दुग्धधारा तथा अरुण प्रभा से रञ्जित आकाश के ध्रुवतारा से की गई है। भगवान् बुद्ध का ललाट स्वर्णफलक जैसा माना जाता है। ऊर्णा महापुरुष के बत्तीस लक्षणों में से एक है (उण्णा खो पनस्स भोतो गोतमस्स भमुकन्तरे जाता ओदाता मुदुतूलसन्निभा—म० नि० २।३८६)। प्रस्तुत पद्य में ऊर्णा को पूर्ण चन्द्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मण के स्थान पर म्मण छान्दस हेतु से हुआ है।

(२) पालि-साहित्य में मार का व्यापक वर्णन आता है। इसे सद्धर्म-विरोधी दुष्ट देव बताया गया है। यह मनुष्यों को सत्कार्यों से हटाकर संसार में लिप्त रखता है। जब सिद्धार्थकुमार ने महाभिनिष्क्रमण किया तो मारने उन्हें रोका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने उन्हें चक्रवर्ती राज्य का प्रलोभन दिया किन्तु जब इन सब बातों का सिद्धार्थकुमार पर कोई असर नहीं हुआ तो वह उनके पीछे लग गया। जब सिद्धार्थकुमार (बोधिसत्त्व) बुद्धत्व-प्राप्ति के दृढ़ संकल्प के साथ बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर साधना में लीन थे तब मारने विविध उपायों से उनकी साधना को भङ्ग करना चाहा।

प्रस्तुत पद्य में उसी तथ्यपर प्रकाश डालते हुए कवि कहता है कि मारने बोधिसत्त्व को चारों ओर से घिरवाकर उन पर पैने स्वर्ण वाणों से आक्रमण किया किन्तु वे सभी स्वर्ण वाण बोधिसत्त्व को विना कोई हानि पहुँचाये उनके चरणों में जा गिरे।

यह मार क्या है ? इसपर बहुत विचार हुआ और अन्त में यही निष्कर्ष निकाला गया कि मार कोई वाह्य देव या दानव नहीं है अपितु मनुष्य के मन के अन्दर उठनेवाला अकुशल विचार है। यह वह विचार है जो मनुष्यों को अच्छे कार्यों से विरक्त कर सांसारिक प्रपञ्चों में बांधे रखता है।

(३) इस पद्य में बत्तीस महापुरुषलक्षणों में से बुद्ध के पैरों में विद्यमान पांच लक्षणों का वर्णन किया गया है। भगवान् बुद्ध के पैर सुनहले रंगवाले (सोवण्ण-वण्णो), सूक्ष्म त्वचावाले (सुखुमच्छवि), जमीन पर बराबर जमनेवाले (सप्पतिट्ठित), सुकोमल (मुदुतलुनहत्थपाद) एवं बड़ी एड़ीवाले (आयतपण्हि) थे। बुद्ध के पैरों की सोने के वर्ण के समान त्वचा अत्यन्त सूक्ष्म थी। इससे उनके पैरों पर धूल नहीं चिपटती थी। (सुवण्णवण्णो कञ्चनसन्निभत्तचो; सुखमच्छवि ' 'सुखुमत्ता छविया रजोगल्लं काये न उपलिम्पति; सुप्पतिट्ठितपादो ' ' अस्स पन सुवण्णपादुकतलमिव एकप्पहारेनेव सकलं पादतलं भूमिं फुसति, एकप्पहारेनेव भूमितो उट्ठहति; सप्पिसण्डे ओसारेत्वा ठपितं सतवारविहतकप्पास पटलं विय मुदु। यथा च इदानि जातमत्तस्स, एवं वुड्ढकाले पि मुदुतलुना येव भविस्सन्ति; आयतपण्ही ति दीघपण्हि, परिपुण्णपण्ही ति अत्थो (सुगङ्गल० २। १३४-१३७)। कमतुन्नति = कमतो उन्नति।

(४) अलौकिक पुरुष जब चलते हैं तो उनके पैरों के नीचे कमल उत्पन्न होते जाते हैं। फलतः पृथ्वी पर चलने पर भी उनके पैर कमल पर ही पड़ते हैं। इस प्रकार के कमलों को आश्चर्य कमल कहते हैं। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि इन आश्चर्य कमलों पर चलने के कारण ही बुद्ध के पैरों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का तलभाग लाल है। (तुलना कीजिये—पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति; भक्तामरस्तोत्र, ३६) । सकाय = स्वकया ।

(५) भगवान् बुद्ध के पैरों के तल-भागों में विद्यमान आठ सौ मंगल लक्षणों पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो कुशल व्यक्ति (ब्रह्मा) ने इन सभी लक्षणों को भगवान् बुद्ध के स्वामित्व को प्रदर्शित करने के लिए ही बनाया हो। इनमें से कुछ उत्तम लक्षणों का कवि ने पद्य संख्या ३९ तक वर्णन किया है। यदि उन सभी मंगल लक्षणों की सूची बनायी जाय तो वह इस प्रकार होगी—समस्त लोक का प्रतिबिम्ब (८), नाभि एवं नेमि से युक्त हजार आराओंवाला चक्र (९), श्रीवत्स, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, अवतंसक (शिरोभूषण) (११); भद्रपीठ, वर्द्धमान, पूर्ण कुम्भ, पात्र (१२); श्वेत छत्र, खड्ग, तालवृन्त, मयूरहस्त (मयूरपंखा) (१३); अंकुश, प्रासाद (१४); पूर्ण पात्र, माला (१५); उष्णीष, नीलकमल, मणि, रक्त कमल (१६); मेरु (१७); चार बड़े द्वीप, दो हजार छोटे द्वीप (१८); सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रसमूह, चक्र, ध्वज (१९); चक्र (२०), शंख (२१); मछलियों का जोड़ा, कुंभीर (मगर) (२२); सात नदियां, सात सरोवर, सात पर्वत, पताका (२३); पाटङ्कि (उठा हुआ आसन), चाँवर, तोरण (२४); नालागिरि एवं गिरिमेखला नामक श्रेष्ठ हाथी (२५); गरुड़राज, व्याघ्रराज, वालाह अश्वपति (२६); गजराज (२७); कैलाश-प्रतिमा (२८); हंस (२९); ऐरावण गजराज (३०); वासुकि नागराज (३१); मयूरराज (३२); स्वर्ण नौका (३३); हिमालय पर्वत (३४); कोयल (३५); चकवा, मकर, कुरर, चकोर (३६); किन्नर, किन्नरी (३७); वृषभ, बछड़े सहित गाय, छः काम स्वर्ग, सोलह धातुधाम (३८); समस्त प्राणी (३९)।

बुद्ध के चरणतलों में अंकित मंगल लक्षणों की सूची मूल अट्ठकथा (सुमङ्गलविलासिनी भाग २ पृ० १३४-१३५) में इस प्रकार दी गई है—

'चक्कानी ति द्वीसु पादतलेसु द्वे चक्कानि। तेसं अरा च नेमि च नाभि च पालियं वुत्ता व। सब्बाकारपरिपूरानी ति इमिना पन अयं विसेसो वेदितब्बो। तेसं किर चक्कानं पादतलस्स मज्झे नाभि दिस्सति, नाभि परिच्छिन्ना वट्टलेखा दिस्सति, नाभिमुखपरिक्खेपपट्टो दिस्सति, पनाळिमुखं दिस्सति अरा दिस्सन्ति, अरेसु वट्टिलेखा दिस्सन्ति, नेमिमणिका दिस्सन्ति। इदं पन पालियं आगतमेव। सम्बहुलवारो पन अनागतो। सो एवं दट्ठब्बो—सत्ति सिरिवच्छो नन्दि सोवत्तिको वटंसको वड्ढमानकं मच्छयुगलं भद्दपीठं अङ्कुसको पासादो तोरणं सेतच्छत्तं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खग्गो तालवण्टं मोरहत्थको वाळबीजनी उण्हीसं मणि पत्तो सुमनदामं नीलुप्पलं रत्तुप्पलं सेतुप्पलं पदुमं पुण्डरीकं पुण्णघटो पुण्णपाति समुद्दो चक्कवाळो हिमवा सिनेरु चन्दिमसुरिया नक्खत्तानि चत्तारो महादीपा द्विपरित्तदीपसहस्सानि अन्तमसो चक्कवत्तिरञ्ञो परिसं उपादाय सब्बो चक्कलक्खणस्सेव परिवारो।'

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने बुद्ध के चरणतलों में विद्यमान मंगल लक्षणों के वर्णन में अट्ठकथा का अनुसरण किया है। हिन्दी अनुवाद में कहीं-कहीं कुछ अन्तर हो गया है। अतः उक्त उद्धरण के आधार पर यत्रतत्र कुछ सुधार करने से स्थविरवादी परम्परा के अनुसार सही अर्थ समझा जा सकता है।

(६) ससेवि के स्थान पर सस्सेवि (छान्दस हेतु), कल=मधुर, उत्तम।

(७) संसार में बुद्ध के समान श्रेष्ठ माने जाने वाले देवों या महापुरुषों के चरणों का सहारा लेने से निश्चित पतन होगा—इस तथ्य को समझकर ही इतर देवों या महापुरुषों के चरणों का आश्रय छोड़कर सारे संसार ने बुद्ध के चरणों का सहारा लिया है।

सपदेसु—समानं पदं येसं तेसु; त्यधोकत=ते+अधोकत।

(८) भगवान् बुद्ध के चरण-तलों में प्रतिबिम्बित समस्त संसार पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि गति, जाति, लिङ्ग आदि अनेक प्रकारों में अच्छी तरह से विभक्त सारे संसार को यह दृढ़ विश्वास हो चुका है कि कष्टों का निवारण एवं कल्याण की प्राप्ति बुद्ध के चरणों में जाने से ही हो सकती है। इसीलिए सारा संसार बुद्ध के चरणों में स्थित होकर कल्याण-प्राप्ति के लिए तत्पर-सा दिखायी दे रहा है।

(९) पातुभूता चक्का=पातुभूतानि चक्कानि। कारण, पालि में अकारान्त नपुंसकलिंग शब्द के प्रथमा विभक्ति बहुवचन में चक्का, चक्कानि—ये दोनों रूप होते हैं।

दिगुणानिव=द्वि+गुणानि+इव (गुण आदि शब्द उत्तर पद में हो तो पूर्व पद द्वि को दि आदेश होता है, मो० ३.९२)। त्यङ्घी=ते+अङ्घी।

(१०) महासुदर्शन राजा को जब चक्ररत्न उत्पन्न हुआ तो उसने उस चक्ररत्न के सहारे समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर अपने प्रभुत्व को स्थापित किया। फलतः महासुदर्शन विख्यात चक्रवर्ती राजा बने। (दी० नि० २।१३०-१५०)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां भगवान् बुद्ध के दोनों ही चरणों के तलभागों में चक्र के चिह्न विद्यमान थे। इस पर कवि कहता है कि जिस प्रकार एक चक्र के प्रादुर्भाव ने महासुदर्शन राजा के समस्त पृथ्वीपर प्रभुत्व को प्रकट किया, उसी प्रकार भगवान् बुद्ध के दो चरणतलों में प्रादुर्भूत दो चक्र उनके धर्म एवं संसार—इन दोनों पर प्रभुत्व को प्रकट करते हैं।

लोक में प्रसिद्ध विष्णु के सुदर्शन चक्र के कारण यहाँ यह भ्रम हो जाता है कि 'सुदस्सनस्स चक्कसदिसानि' की जगह 'सुदस्सनचक्कस्स सदिसानि' यह पाठ होना चाहिये था। किन्तु पालि-साहित्य के प्रसंग एवं प्रस्तुत ग्रन्थ की भावना को ध्यान में रखकर 'सुदस्सन' पद से महासुदर्शन चक्रवर्ती राजा का ही ग्रहण करना युक्तिसंगत है। इसीसे पद्य २० की ससंसदसुदस्सन चक्कवत्तिचक्कानुगन्तललितं—इस पङ्क्ति से संगति बैठती है। भगवान् बुद्ध स्वयं अतीत काल में 'महासुदस्सन' चक्रवर्ती थे किन्तु उस समय वे पृथ्वी के राजा थे और बुद्ध बनने के बाद धर्म एवं संसार—दोनों के प्रभु हो गये।

(११) श्रीवत्स (सिरिवच्छक), स्वस्तिक (सोवत्थि) नंद्यावर्त (नन्दिवत्ती) एवं अवतंसक (शिरोभूषण)—ये चार मंगललक्षण लोक में विख्यात हैं। श्रीवत्स भगवान् विष्णु के सीने में अंकित था। श्रमणसंस्कृति में भी इसे जिन-देव आदि महापुरुषों के हृदय का एक ऊँचा अवयवाकार चिह्न माना गया है (पाइयसद्दमहण्णवो पृ० ९०४)। किन्तु बौद्ध-परम्परा के अनुसार यह भगवान् बुद्ध के चरणों में विद्यमान मंगललक्षणों में से एक था। इसीप्रकार अन्य लक्षण भी बुद्ध के चरणों में ही विद्यमान थे। वच्छतु=वसतु।

(१२) भद्रपीठ उस सुन्दर आसन या चौकी को कहते है जिसपर किसी राजा या देवता का अभिषेक किया जाय। पालि साहित्य में भद्रपीठ से वह आसन अभिप्रेत है जिसपर बैठकर बोधिसत्त्व ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। वर्धमानक भी एक मंगललक्षण है। इसे छोटा पात्र या कसोरा कह सकते हैं। इस पद्य में कवि ने भद्रपीठ से भद्र (कल्याण), वर्धमानक से वृद्धि, पूर्ण कुम्भ से पूर्णता एवं पात्र से कष्ट निवारण की कामना की है। अङ्घ्रि शब्द में जातिपरक एकवचन है। पात्र > पात्रि > पात्री > पाती।

(१३) संक्लेश—जो धर्म अपने आश्रित सत्त्वों को अग्नि की तरह तप्त करते हैं उन्हें संक्लेश कहते हैं। क्लेश दस होते हैं—लोभ, द्वेष, मोह, मान, दृष्टि, विचिकित्सा, स्त्यान (आलस्य), औद्धत्य, आह्रीक्य (निर्लज्जता) एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनपत्राप्य (संकोच का अभाव)। अपनेतं (अपनेतु)=आत्मनेपद, लोट्लकार प्रथमपुरुष एकवचन। मक्खिकं के स्थान पर मक्खिक (छान्दस हेतु)। अघातपेतं=अघातपं+एतं।

(१४) सब्बगति—भवान्तर गमन को गति कहते हैं। सामान्यतः गति ५ प्रकार की होती हैं—निरय, तिर्यग्योनि (तिरच्छानयोनि), प्रेतविषय (पेत्ति विसय), मनुष्य एवं देव (दी० नि० ३।१८२) किन्तु कथावत्थु में उक्त पाँच गतियों में असुरकाय की गणना कर छः गतियों का उल्लेख भी मिलता है (कथा-वत्थु पृ० ३१९)। इनमें मनुष्य एवं देव—ये दो शुभ गति (सुगति) हैं, शेष तीन या चार दुर्गति (दुग्गति)। इन सभी गतियों से मुक्ति को निर्वाण कहते हैं अर्थात् जब सत्त्व का भवान्तरगमन शान्त हो जाता है तो उसे निर्वाण कहते हैं। सिरिविलासनिकेतनं व = सिरिविलासनिकेतनं इव।

(१६) समुद्दो=बुद्ध के चरणों के तलभागों में विद्यमान एक मंगल लक्षण। समुद्दो का दूसरा साहित्यिक अर्थ समुद्रः (मुद्रायुक्त) भी किया जा सकता है किन्तु यह अर्थ स्थविरवादी परम्परा के विपरीत है।

अतः प्रस्तुत प्रसंग में समुद्दो का समुद्र अर्थ करना ही अधिक उपयुक्त है। फलतः सन्नेत्त''''समुद्दो का अर्थ है—अच्छे नेता (चालक) की नाव में आनेवाले प्राणियों को भगवान् बुद्ध के चरणों के तल भागों में अंकित समुद्र सात अमूल्य बोध्यङ्गरूपी रत्नों को दे।

बोध्यङ्ग—जिन धर्म-समूह के द्वारा आर्य सत्य जाने जाते हैं उन्हें बोधि कहते हैं। बोधि के अंग को बोध्यंग कहते हैं। बोध्यङ्ग सात हैं—स्मृति बोध्यङ्ग, धर्मविचयबोध्यङ्ग, वीर्यबोध्यङ्ग, प्रीतिबोध्यङ्ग, प्रश्रब्धिबोध्यङ्ग, समाधिबोध्यङ्ग तथा उपेक्षाबोध्यङ्ग।

(१७) कवि भगवान् बुद्ध के चरणतलों में विद्यमान मेरु पर्वत रूपी मङ्गल लक्षणपर उत्प्रेक्षा करता है कि यद्यपि मेरु अत्युन्नत एवं स्थिर—इन दो गुणों से युक्त है किन्तु बुद्ध ने इन गुणों में उसे पराजित कर दिया। फलतः जीते जाने से मेरु अपने मुख्य काम (इन्द्र के भवन को सहारा देना) को छोड़कर बुद्ध के चरणों में स्थित है।

प्रस्तुत पद्य में दो 'भवतं' पद हैं। इनमें एक का तात्पर्य भवतां (आपकी) से है जब कि दूसरा भवतं भू धातु का आत्मनेपद लोटलकार प्रथमपुरुष एक-वचन का रूप है। विभूतिया के स्थान पर विभूत्या का प्रयोग (छान्दस हेतु)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८) चक्रवाल पर्वत सारे पृथ्वी-मण्डल को घेरनेवाला पर्वत है। पृथ्वीपर जितने भी द्वीप, समुद्र, नदी आदि हैं, वे सभी इसी पर्वत की परिधि के भीतर हैं। इस पर्वत की परिधि के उस पार अन्धकार ही अन्धकार है। अवतं (अवतु)—अव धातु आत्मनेपद लोट्‌लकार प्रथमपुरुष एकवचन। अदत्वा के स्थान पर अदत्व का प्रयोग (छान्दस हेतु)। अपायपतमानं जन्तुं (अपायपतनं) अदत्वा धारेन्तु अर्थात् कष्टों में गिरनेवाले प्राणी को कष्टों में पतन न देकर सहारा दें। अपाय दुर्गतियों को भी कहते हैं।

(१९) ह्रद > द्रह > दह।

(२०) वत्ततं (वत्ततु)—आत्मनेपद लोट्‌लकार प्रथमपुरुष एकवचन।

(२१) प्रस्तुत पद्य में भगवान् बुद्ध के चरणतलों में विद्यमान शंख के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि जब बोधिसत्त्व बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प पूर्वक अपने वज्र-जैसे अभेद्य आसनपर बैठे थे तभी इन्द्र उनकी पूजा करने आया। जाते समय वह अपने साथ लाये हुए 'महाविजय' नामक शंख को भूल से वहीं छोड़ गया। इतने में मार का आक्रमण प्रारम्भ हुआ। मार के भयंकर आक्रमण के कारण भयभीत शंख बोधिसत्त्व के चरणतलों में सुरक्षित स्थान समझकर छिप गया।

वज्रासन—जम्बुद्वीप के मध्य में कांचनमयी भूमिपर प्रतिष्ठित वज्रासन है। इसपर बोधिसत्त्व अपना आसन वज्रोपम समाधि के साक्षात्कर के लिए लेते हैं तथा अर्हद् तथा बुद्ध होते हैं। कारण, कोई दूसरा प्रदेश या कोई दूसरा आश्रय बोधिसत्त्व की वज्रोपमसमाधि को सहन करने में समर्थ नहीं है।

(२२) भवतं (भवतु)—आत्मनेपद, लोट्‌लकार, प्रथमपुरुष, एकवचन। पादम्बुजाकरं एवं विगाहितुं के स्थान पर क्रमशः पादम्बुजाकर एवं विगाहितु का प्रयोग (छान्दस हेतु)। पदुट्ठचित्ता नो पहोम के स्थानपर पदुट्ठचित्ता नो पहोन्तु का प्रयोग (पुरुषव्यत्यय)।

(२३) घेराकार चक्रवाल पर्वत के मध्य में मेरु पर्वत है। मेरु पर्वत एवं चक्रवाल पर्वत के मध्य क्रमशः युगन्धर, ईषाधर, खदिरक, सुदर्शनगिरि, अश्वकर्ण, विनतक एवं निमिंधरगिरि—ये सात पर्वत हैं। ये सभी घेराकार हैं। इन पर्वतों के मध्य सात नदियां तथा पर्वतों पर सात सरोवर हैं। प्रस्तुत पद्य में सात नदियों, सात सरोवरों तथा सात पर्वतों से उक्त नदियां, सरोवर एवं पर्वत अभिप्रेत हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२४) पाटङ्कि—शिविका ? कपड़े का आसन जिसके दोनों ओर बांस लगे हो (वंसे लग्गेत्वा कतं पटपोट्टलिकं, समन्त० ३।११४९)। सुजहतं (सुजहातु = ठीक़ से हटाये)—आत्मने० लोट्लकार प्र० पु० एकवचन। महुस्सव = महा+ उस्सव (भारी आनन्द)।

(२५) नालागिरि—यह राजगृह का एक भयंकर एवं मनुष्यघातक हाथी था। देवदत्त ने महावत से कहकर नालागिरि को उस समय सड़क पर छुड़वा दिया जब भगवान् बुद्ध पिंडाचार के लिए राजगृह में प्रविष्ट हुए। मनुष्यघातक नालागिरि हाथी को देखकर मनुष्यों ने भगवान् बुद्ध को हट जाने के लिये कहा किन्तु वे आगे बढ़ते गये तथा नालागिरि हाथी को मैत्री (भावना) युक्त चित्त से आप्लावित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान् के मैत्री (पूर्ण) चित्त से प्रभावित हो सूँड़ को नीचे करके, जहां भगवान् थे, वहाँ जाकर खड़ा हो गया। भगवान् ने दाहिने हाथ से नालागिरि के कुम्भ को छुआ। हाथी ने सूँड़ से भगवान् की चरण-धूलिको ले, शिर पर डाला। फिर वह नालागिरि हथसार में जाकर अपने थानपर खड़ा हो गया। (चुल्लवग्ग पृ० २९६-२९७)।

गिरिमेखला–यह मार देवपुत्र के एक हजार हाथियों में प्रमुख था। मार जब भी विचरण करता था, इसी हाथीपर सवार होकर निकलता था। गिरिमेखला का प्रमाण डेढ़ सौ योजन था तथा उसकी चिंघाड़ भयानक एवं हृदय को कंपा देनेवाली होती थी। जब बोधिसत्त्व (सिद्धार्थ) बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए बोधिवृक्ष के नीचे बैठे, उससमय मार इसी गिरिमेखला नामक हाथीपर सवार होकर बोधिसत्त्व की साधना भङ्ग करने के लिए आया था। जब मार पराजित होकर भाग गया तब गिरिमेखला ने बोधिसत्त्व के वेस्सन्तरदान पर विचार करते हुए उनके सामने घुटने टेक दिये।

प्रस्तुत पद्य में इन्हीं दो हाथियों के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि वे सिंह के डर से ही मानो बुद्ध के सिंह के समान शक्तिशाली पैरों के सामने नतमस्तक हुए हैं।

हनताघदन्ति = हनतु + अघदन्ति।

(२६) सुवण्णराजा = सुपण्णराजा (सुपर्णराज), प के स्थान पर व (पो वः हेम० १।२३१)। वालाह अस्सपति = वलाहक अस्सपति (छान्दस हेतु), पूर्व जन्म में बोधिसत्त्व का प्रमुख अश्व (एको येव सो अस्सो होति यमहं तेन समयेन अभिरुहामि—वलाहको अस्सो, संयु० नि० २।३६२)। सम्भवतः तीव्र गति से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमन करते समय बादलों की तरह उड़ता हुआ-सा प्रतीत होने से उसे वलाहक कहा जाता था। पायेसु=अपायेसु, आदि स्वरलोप (छान्दस हेतु)

(२७) इस पद्य में कवि कहता है कि भगवान् बुद्ध के पैरों में मंगल लक्षण के रूप में विद्यमान गजराज तत्काल प्राणियों के कष्टों को तथा दूसरे सैकड़ों शत्रुओं की प्रसन्नता को नष्ट कर दे। गजराज की विशेषता यह है कि भयंकर एवं छल से परिपूर्ण शत्रुपर आक्रमण करते समय उसने क्रोध में आकर जब पर्वत से टूटी हुई चट्टान को सूंड़ में धारण किया तो उसकी सूंड़ में स्थित वह चट्टान छद्दन्त हाथी की सूंड़ में विद्यमान दांतों जैसी प्रतीत हो रही थी।

छद्दन्त—हाथियों की एक श्रेष्ठ जाति। लुद्द=रुद्द (रौद्र)। दुब्भिन् = दम्भिन् (छली)।

(२८) उपोसथ हत्थिराजा—छद्दन्त की तरह उपोसथ भी हाथियों की एक श्रेष्ठ जाति थी। भगवान् बुद्ध अपने पहले के एक जन्म में जब चक्रवर्ती राजा थे तो चौरासी हजार हाथियों में से केवल उपोसथ हाथी पर ही सवार होते थे (चतुरासीतिया नागसहस्सानं एको येव सो नागो होति यमहं तेन समयेन अभिरुहामि—उपोसथो नागराजा, संयु० नि० २।३६२)।

पादपरिचारिकता=पादपरिचारिकताय (छान्दस हेतु)

(२९) भगवान् बुद्ध के चरणों में स्थित हंस के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि जब उस हंस ने भगवान् का हंसना देखा तो हीनत्व की भावनारूपी दृढ़ बन्धनों से बंधा हुआ-सा बैठ गया और जब भगवान् का सुन्दर स्वर सुना एवं सुन्दर गति देखी, तब उसका स्वर एवं गमन के विषय में सारा घमण्ड समाप्त हो गया। फलतः वह मूक पक्षी बनकर भगवान् के चरणों में स्थित हो गया।

हंस=हास्य। दह=दळ्ह, गन्ति=गति (छान्दस हेतु) बद्धं=बद्धो (पाद-हंस का विशेषण होने से)।

(३०) एरावण=ऐरावण, इन्द्र का हाथी। यह समुद्र-मंथन के समय निकले चौदह रत्नों में से एक था। बौद्ध-परम्परा के अनुसार यह एक देवपुत्र है किन्तु नाग का कार्य करने से इसे ऐरावण महानाग कहते हैं। ऐरावण दिव्य सर में स्नान करता था किन्तु जब उसने रमणीयता में सम्पूर्ण लोक में विख्यात भगवान् बुद्ध की पैररूपी वापिका के विषय में सुना तो यहाँ आकर वापिका में डुबकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगायी। डुबकी लगानेपर उसे दिव्य सर से कहीं अधिक आनन्द प्राप्त हुआ। फलतः वह भगवान् के मनभाये पैरों में ही मंगललक्षण के रूप में रहने लगा। (एरावणो महानागो ति एरावणो च देवपुत्तो, जातिया नागो न होति, नागवोहारेन पनेस वोहरियति—सुमङ्गल० २।४१५)।

(३१) वासुकि नागराज—तीन प्रमुख नागराजों में से एक (समुद्र-मंथन के समय इसका रज्जु के रूप में उपयोग किया गया था)।

(३२) लुब्धक=अंगुलिमाल। यह भग्गव नामक पुरोहित का अहिंसक नामक पुत्र था। गुरुदक्षिणा हेतु उससे एक हजार अंगुलियाँ माँगी गयीं। वह राहगीरों को मारकर उनकी अंगुलियों को इकट्ठा करने लगा। अन्त में भगवान् बुद्ध के धर्मोपदेश को सुनकर इसने पाप कर्म को छोड़ दिया। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि जिसप्रकार धर्मोपदेश के शब्द ने लुब्धक (अंगुलीमाल) के पापों को नष्ट किया उसी प्रकार भगवान् के पैरों में आश्रित मयूरराज पापरूपी सर्पों का हनन करें। जिसप्रकार धर्मोपदेश के शब्द पाप नाशक होते हैं वैसे ही मयूरराज सर्पों का विनाशक होता है।

(३३) सुप्पारक पण्डित—भरुराष्ट्र में नाविक के पुत्र थे। नाविक-विद्या में पारङ्गत होने के बाद वे नाविक-कृत्य करने लगे। जब वे समुद्र के खारे पानी के स्पर्श से अन्धे हो गये तो राजाश्रय में रहने का निश्चय किया किन्तु राजा के व्यवहार से असन्तुष्ट हो पुनः भरुकच्छ लौट आये। उस समय भरुकच्छ के व्यापारियों ने नाव बनाकर सुप्पारक को उसका नियामक बनाया। भरुकच्छ से निकले धन की खोज करने वाले व्यापारियों को उसने खुरमालि, अग्गिमालि, दधिमालि, नीलवर्णकुशमालि एवं नलमालि नामक समुद्रों से क्रमशः हीरे, सोना, चांदी, नीलमणि एवं बिल्लौर निकलवा कर नाव में रख लिया। तत्पश्चात् जब नाव वडवामुख समुद्र में फँस गई तो व्यापारियों समेत उस फँसी नौका को वहाँ से निकाल कर वह सकुशल भरुकच्छ ले आया (देखिये जातक संख्या ४६३)।

सुप्पारपण्डितगता—सुप्पारको पण्डितो गतो याय सा। पत्तनवरं=पट्टनवरं (श्रेष्ठ नगर या बन्दरगाह)।

(३४) भगवान् बुद्ध जब अमरवती नामक नगर में सुमेध पण्डित थे तब सांसारिक जीवन से विरक्त हो घर से निकल कर हिमालय पर्वत पर चले गये थे (सो सुमेधपण्डितो··नेक्खम्मुपसंहितं अत्थं चिन्तेत्वा सकनिवेसने भोगक्खन्धं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

··विस्सज्जेत्वा··अमरनगरतो निक्खमित्वा एकको व हिमवन्ते धम्मिकं पब्बतं निस्साय; निदान-कथा, पृ० १२-१४)। परिपाचनहेतु—सिद्धि में कारण।

(३५) सुञ्ञस्सरोपगत = सुञ्ञस्सर + उपगत। करवीक = कलविङ्क, कलकण्ठ (मधुर स्वरवाला पक्षी, कोयल), जहता = जहतु (छान्दस हेतु)।

(३६) वेस्सन्तर शिवि देश में राजा संजय एवं रानी फुसती के पुत्र थे। जेतुत्तर की वेस्सवीथि में जन्म लेने से वेस्सन्तर नाम पड़ा। मंगल हाथी को कलिङ्ग राष्ट्र के ब्राह्मणों को दान में देने से उसे राज्य छोड़ना पड़ा। बाद में उसने माद्री (मद्दी) देवी, जालि (पुत्र) तथा कृष्णाजिना (पुत्री) को भी दान में दे दिया। इस अनुपम दान परम्परा से सभी पक्षी अपने तालाबों को छोड़कर उनके चरणों में आकर सन्तुष्ट रहने लगे (जातक २।३२६-३९७)। वेस्सन्तरेन चरणम्बुजि = वेस्सन्तरस्स चरणम्बुजि।

(३७) भगवान् बुद्ध के चरणों में विद्यमान किन्नर-किन्नरी के मङ्गल लक्षण पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वे पत्नी से युक्त बोधिसत्त्व की चन्द्रकिन्नरगति में उत्पत्ति का स्मरण करा रहे हों। (द्रष्टव्य—जातक ४८५)

सामग्गिमग्गपटिपत्ति = समग्रमार्गप्रतिपत्ति (समस्त मार्ग सम्बन्धी उत्तम आचरण)। वे = वै (निश्चय से)।

(३८) सं = उत्तम (अव्यय)। कामसग्गा—कामतृष्णा के आलम्बनभूत स्वर्ग को कामस्वर्ग कहते हैं। ये छः प्रकार के होते हैं -१. चातुर्महाराजिका (धृतराष्ट्र, विरूल्हक, विरूपाक्ष एवं कुबेर—इन चार महाराजों के भक्त देवों का निवास स्थान), २. त्रायस्त्रिंशा (३३ देवों की निवास भूमि), ३. यामा (दुःख से रहित देवों, जिन्हें याम कहते हैं, की निवासभूमि), ४. तुषिता (तोष को प्राप्त देवों का निवास स्थान), ५. निर्माणरति (सुख के निर्माण में रति रखनेवाले देवों का निवासस्थान), ६. परनिर्मितवशवर्ती (दूसरों के द्वारा निर्मित आलम्बन के वश में रहने वाले देवों का निवासस्थान)। धातुधाम = धातुगर्भ (बुद्ध आदि महापुरुषों की धातु रखने की डिब्बिया)। सस्सेविनो = ससेविनो (छान्दस हेतु)।

(३९) भगवान् बुद्ध के चरणों में विद्यमान मंगललक्षणों के रूप में जिन पशु-पक्षियों का पद्य संख्या २५ से पद्य संख्या ३८ तक वर्णन किया गया है, वे यद्यपि आपस में जन्मजात विरोधी हैं, फिर भी बुद्ध की मधुरवाणी को सुन कर बिना किसी भय के एक जगह (पैरों में) स्थित (गति-रहित) जैसे हैं। वे गति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीन पशु-पक्षी भव में आसक्त मनुष्यों की सभी गतियों को समाप्त करें अर्थात् निर्वाण प्राप्त करायें।

सब्बं गतिं हनन्तु=निब्बानं पापयन्तु। करवीकसरं=भगवान् बुद्ध के शरीर में विद्यमान बत्तीस महापुरुषलक्षणों में से एक है। इसे ब्रह्मस्सर कहा गया है (ब्रह्मस्सरो खो पन सो भवं गोतमो करवीकभाणी, करवीको विय भणतीति करवीकभाणी मत्तकरवीकरुतमञ्जुघोसो ति अत्थो; म० नि० २।३८६, सुमङ्गल० २।१४०)।

(४०) काहळ=कूष्माण्ड (लौकी, वाद्य विशेष)। इन्दिराय = इन्दिरालय (नीलकमल)। सन्नीर = पुष्प विशेष (?) हरी वनस्पति या ककड़ी का एक प्रकार जिसकी कली लम्बी होती है। जङ्घाद्वयं—दोनों जांघें (पैर के पंजे एवं घुटने के बीच का भाग)।

(४१) मुकुर – दर्पण (अथवा मुकुल=कली)। घुटनों के तीनों विशेषणों से यही भाव प्रगट होता है कि बुद्ध के घुटने कछुवे की पीठ के समान उन्नतोदर थे। निजत्त = निजत्तं (छान्दस हेतु)। होतं (होतु)—आत्मने० लोट्० प्रथमपु० एकवचन।

(४२) यहाँ भगवान् बुद्ध के ऊरु को छद्दन्त हाथी के उत्तम दांतों की, हाथी की सूँड़ की तथा केले के पेड़ की उपमा दी गई है। इससे जांघों की तीन विशेषताएं प्रगट होती हैं—जांघें चिकनी थीं, पतलेपन से क्रमशः मोटेपन को प्राप्त थीं तथा सुडौल थीं।

यहां छद्दन्त हाथी के द्वारा दिये गये दांतों का अभिप्राय छद्दन्तजातक (जातक-५१४) से है। उस जातक के अनुसार भद्द राजा की सुभद्दा रानी को छद्दन्त हाथी के दांत प्राप्त करने का दोहल हुआ। फलतः दांतों को लेने शिकारियों को भेजा गया। शिकारियों ने छद्दन्त हाथी को गड्ढे में गिराकर उसके दांतों को तोड़ना चाहा पर जब वे दांत शिकारियों से नहीं टूटे तो स्वयं छद्दन्त हाथी ने उन दांतों को तोड़ा और उन्हें शिकारियों के लिये दे दिया।

(४३) जङ्घक्खक=जङ्घा+अक्खक (जंघा रूपी धुरा)। पाद चक्क= पैर रूपी चक्र अथवा पैरों में मङ्गल लक्षण के रूप में विद्यमान चक्र। मनोज = मनुञ्ञ (मनोज्ञ)। लहु पापयातु=लहुं पापयतु (छान्दस हेतु)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४४) रम्मोरपाकटतटाक = रम्म (रम्य)+उर (वक्षस्थल)+पाकट (स्वाभाविक)+तटाक (तालाब)। पणालिककोटिकट्ठा = पणालिकाय कोटि-कायं तिट्ठति या सा। केळिता=केळायिता, विडम्बिका (समान)। सस्सेविनं= संसेविनं (छान्दस हेतु)।

(४५) समुद्र की भँवर में फंसा असहाय मनुष्य चक्कर खाता है, डूबता है तथा पानी निगलता है और अन्त में मूर्छित हो जाता है। यहाँ भगवान् बुद्ध का रूप, नाभि एवं सौन्दर्य को क्रमशः समुद्र, भंवर एवं जलराशि के रूप में प्रस्तुत कर भक्त की ध्यानावस्था को मूर्च्छा के रूप में चित्रित किया गया है।

(४६) रहदं=ह्रदं (स्वरभक्ति एवं वर्णविपर्यय)। भजतं = भजतां (भक्तों के लिए)। देतं (देतु)—आत्मने० लोट्, प्र० पु० एकवचन।

(२७) चारूरसारिफलको=चारु+उर (उरस्)+सारिफलको (शारि-फलकः)। होतं (होतु)—आत्मने० लोट् प्र० पु० एकवचन।

(४८) मेत्ता, करुणा, मुदिता और उपेक्खा—ये चार ब्रह्म विहार हैं। भगवान् बुद्ध का चित्त इन चार गुणों से परिपूर्ण था। यहाँ उनके दो हाथों की उपमा उनके चित्त में व्याप्त मैत्री एवं करुणा रूपी दो हथिनियों की सूंड़ से दी गई है। साखासखा = साखासरिक्खा (शाखा के समान)।

(४९) लुनतेन—लू छेदने धातु से निष्पन्न। भवुं=भवेय्युं।

(५०) आज से चार असंख्येय एक लाख कल्प पहले दीपंकर बुद्ध जिस रास्ते से रम्यक नगर जा रहे थे उस रास्ते में एक जगह कीचड़ से भरा गड्ढा था। उस समय सुमेध तपस्वी (भगवान् बुद्ध के पूर्व भव की अवस्था) उस कीचड़ पर लेट गये जिससे संघ सहित दीपंकर बुद्ध कीचड़ में से न जाकर उनकी पीठ पर से जायें। (मा भगवा कलले अक्कमि...केसे मोचेत्वा अजिन-जटावाकचीरानि कालवण्णे कलले पत्थरित्वा..कललपिट्ठे निपज्जि, निदानकथा पृ० ३०-३२)। होतं (होतु)—आत्मने० लोट् प्र० पु० एकवचन।

(५१) मुतिङ्ग=मृदङ्ग।

(५२) सोरब्भधम्ममकरन्दनिसन्दमानं=निसन्दमानसोरब्भधम्ममकरन्दं।

(५३) मुख को लक्ष्मी का रथ कहने से मुख के अत्यधिक सौन्दर्य का भाव प्रकट होता है। लक्खीसमारुहितवत्तरथे=समारुहितलक्खीवत्तरथे। जनत्ते=

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य के शरीरों को, मनों को। जिस प्रकार पवित्र कर्णभूषण शरीर के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं उसी प्रकार बुद्ध के कपोलस्थल मनुष्य के मनों को आनन्दित करें।

(५४) भगवान् बुद्ध के ओठों को सौन्दर्य समुद्र की प्रवाललता, शरीररूपी देववृक्ष की कोंपल तथा कमल के केशर को पराजित करनेवाली शोभा से युक्त बताकर उनकी अत्यधिक लालिमा एवं कोमलता का भाव प्रगट किया है।

पराजि=पराजयि। अधोकुरुतं (अधोकुरुतु)—आत्मने॰ लोट्॰ प्र॰ पु॰ एकवचन।

(५५) नाक को कूपदण्ड, ऊर्णा को कूपदण्ड पर स्थित पक्षी तथा भौंहों को लंगर के रूप में देखने पर भगवान् के ओठ मुख (उत्तम गात्र) रूपी समुद्र में नौका जैसे शोभित हो रहे थे।

गत्तुत्तर (गात्रोत्तर)=उत्तम शरीर या शरीर का उत्तम भाग (मुख)।

(५६) ओठों से थोड़ी-सी ढकी दांतों की श्वेत कान्ति अर्धखिले कमल के भीतर विद्यमान केसर की पंक्ति अथवा सरस्वती द्वारा धारण की गई मालती फूलों की माला के समान सुशोभित हो रही है।

ईसं=ईषत्, वानीवधू = वाणीरूपी वधू (सरस्वती)। तस्सं = तस्स (छान्दस हेतु)।

(५७) यहाँ भगवान् बुद्ध की जिह्वा को मुखरूपी सद्धर्म के झरने में विद्यमान लाल शिलातल तथा वाणीरूपी नटवधू का रंगमञ्च कहा गया है। आगे सद्धर्म रूपी नौका में स्थित जिह्वा के प्रति कामना व्यक्त की गई है कि वह संसार-सागर को पार करने के हेतु मनुष्यों के लिए सहायक बनें।

(५८) यहाँ भगवान् बुद्ध के उपदेशों को धारण करनेवाले पुरुषों के मुक्ति रूपी वधू के साथ पूर्ण समागम की कामना की गई है। उक्त मुक्तिरूपी वधू का परिचय देते हुए आगे कहा गया है कि वह बुद्ध के मुखरूपी घर में रहती है, भगवान् की जिह्वा उसकी शय्या है, ओठ तकिये हैं तथा ओठों पर पड़ने वाली दांतों की श्वेत किरणें उन तकियों के आवरण हैं।

(५९) भगवान् के मुखरूपी क्यारी में नाकरूपी कदली (केले का पौधा) है उसमें भौंहें विकसित पत्ते तथा ऊर्णा अभिनव पत्तों के समान है।

भमुक ∠ भमुख ∠ भमुह ∠ भमुहा (भौं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०) स्वाभाविक रूप से उत्पन्न केशों के जंगल में विद्यमान पीले ललाट्-रूपी शिलातल पर भौं रूपी दो लताओं पर बैठे मयूर-जोड़े की पांच वर्णों (कृष्ण, नील, रक्त, पीत एवं श्वेत) की प्रभा से मनोहर पूंछों के जोड़े (मयूरपुच्छ) के समान तुम्हारे नेत्र मनुष्यों की पापधूलि को स्वच्छ करें।

(६१) प्रस्तुत पद्य में कवि भगवान् की बरौनी (पलक के किनारे के बाल) पर उत्प्रेक्षा करता है कि मानों वे आँख की पुतलीरूपी नील कमल के भीतर जानेवाली भ्रमरपंक्ति हो या कमल-सरोवर के किनारे विद्यमान फूलों के गुच्छों की पंक्ति हो।

इन्दीवर = नीलकमल, भिङ्गिक=भृंगक (भ्रमर), गच्छ=समूह, पम्हावली=पक्ष्मावलि (बरौनी की पंक्ति)। सिरिगते = गतसिरीके (लोके)।... पन्तिभङ्गिपच्चम्बुज=पन्तिभङ्गि पच्चम्बुज....।

(६२) भगवान् बुद्ध के कान ललाई लिये पीले रंग के थे। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि कानों का स्वाभाविक वर्ण तो पीला है किन्तु उनपर ऊपर और नीचे की ओर से क्रमशः प्रफुल्ल नेत्ररूपी एवं हँसते हुए मुखरूपी कमलों की लाल किरणें पड़ रही हैं। फलतः कानों का वर्ण ललाई लिये पीले रंग का प्रतिभासित हो रहा था।

वत्तुल्लस=वत्त (वृत्त)+उल्लसन्त (प्रफुल्ल)। हंस=हसत् (हँसता हुआ)।

(६३) यहाँ नाक को वल्मीक एवं ऊर्णा को भूरिदत्त की गोलाकृति के रूप में वर्णन किया गया है। घानोपरिट्ठित=घानोपरिट्ठिता (छान्दस हेतु)

(६४) भगवान् बुद्ध की भौंहों पर उत्प्रेक्षा करते हुए कवि कहता है कि मानो वह रूप की सुन्दरता (लक्ष्मी) के द्वारा लोक के रूप को जीतने के लिये धारण की गयी जयध्वजा हो। यहाँ नाक ध्वज-दंड तथा भौंहों के ऊपरनीलिमा लिये शरीर का वर्ण नीलाकाश के समान प्रतीत हो रहा है।

रूपिन्दिराय = रूपस्स इन्दिरा ताय, अखिललोकरूपं विजये=अखिललोकरूपस्स विजये (षष्ठी के स्थान पर द्वितीया)। सज्ज=सज्जा (छान्दस हेतु)।

(६५) यहाँ भगवान् बुद्ध के मुख के ऊपर विद्यमान नासिका में छाते या छज्जे की उत्प्रेक्षा की गयी है जो क्लिष्ट होने के साथ-साथ अस्पष्ट भी है।

उण्णस्सितोपला = उण्णा+अस्सित (आश्रित)+उपल। बुन्द ∠ बोंद (देशी शब्द)=मुख। अघातप=अघातपं (छान्दस हेतु)। होतं (होतु)—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपद लोट्० प्रथमपुरुष एकवचन। सिरसुस्सिताभ = सिरसि + उस्सित (उच्छ्रित) + आभं।

(६६) वान का अर्थ है—तृष्णा। अतः वानदिट्ठी का तात्पर्य है तृष्णा पूर्ण दृष्टि से मनुष्यों द्वारा देखा जाने वाला। जब वा धातु से ल्युट् करके वान पद निष्पन्न करेंगे तो उसका अर्थ होगा चञ्चल दृष्टि। प्रस्तुत पद्य में भगवान् बुद्ध के शिर की तुलना गोल मणि से की गयी है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भगवान् के शरीर में विद्यमान बत्तीस महापुरुष लक्षणों में एक उष्णीष शीर्ष भी है। उष्णीष शीर्ष का अर्थ है—पगड़ी-जैसा चारों ओर से समानाकार शिर। कहते हैं कि मनुष्यों ने महापुरुष के उष्णीष शीर्ष को देखकर ही पगड़ी का प्रयोग करना शुरु कर दिया (महापुरिसस्स किर इमं लक्खणं दिस्वा राजूनं उण्हीस-पट्टं अकंसु, सुमङ्गल० २।१४२)।

(६७) भगवान् बुद्ध के केशों में नील कमल की कल्पना करता हुआ कवि कहता है कि समान परिमाण से कन्धों से युक्त भुजाएँ तोरण जैसी प्रतीत हो रही हैं, कन्धों के मध्य भाग में स्थित ग्रीवा के ऊपर शिर के केश घड़े (मंगल कलश) में विद्यमान नीलकमल-जैसे शोभित हो रहे थे। दूसरे शब्दों में भगवान् बुद्ध के शिर के बाल तोरण के मध्य भाग में स्थित मङ्गलकलश के नील कमलों जैसे प्रतीत हो रहे थे।

(६८) प्रस्तुत पद्य में भगवान् बुद्ध के शिर के चारों ओर विद्यमान ज्योति या प्रभा की रेखा का वर्णन किया गया है। इसे किरणों की माला के समान होने से केतुमाला, हाथ भर दूर रहने से व्याम-प्रभा तथा चारों ओर प्रकाश होने से भामण्डल या आभामण्डल कहते हैं। चूँकि नील शिला पर विद्यमान दीपों का प्रकाश तेज होता है, अतः व्यामप्रभा की अतिशयता को प्रकट करने के लिये ही कपाल को नीलशिला के समान कहा गया है।

(६९) प्रस्तुत पद्य में व्यामप्रभा की तुलना सूर्योदय के समय नाचते हुये स्वर्ण मयूर के फैले हुए पंखों से तथा मेरुपर्वत के ऊपर विद्यमान इन्द्र धनुष से की गयी है। इन दोनों उपमाओं से स्पष्ट है कि भगवान् के सुनहले शरीर के शिर के चारों ओर का प्रभा-मण्डल विभिन्न वर्णों का था।

मेघावनद्धसिखरुन्नत-हेंमसेले = मेघावनद्धहेमसेलुन्नतसिखरट्ठा।

(७०) पणिधि का अर्थ है—लालसा, प्रार्थना या संकल्प। इसके लिये अभिनीहार शब्द का भी प्रयोग होता है। जब सुमेध तपस्वी 'दीपंकर बुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिष्यों सहित मेरे ऊपर से चले जाँय जिससे उनके पैरों में कीचड़ न लगे'— यह विचार कर कीचड़ में लेट गये और लेटे-लेटे दीपंकर बुद्ध की बुद्धश्री को देखा तो मन में संकल्प किया कि मैं भी दीपंकर बुद्ध की तरह धर्मरूपी नौका से जनसमूह को संसार-सागर से पार उतारने के बाद स्वयं निर्वाण प्राप्त करूँ। तत्पश्चात् जब दीपंकर बुद्ध ने सुमेध तपस्वी के विषय में भविष्यवाणी की कि यह तपस्वी बुद्ध होगा तब सुमेध तपस्वी ने बुद्धकारक धर्मों का चिन्तन किया। चिन्तन करते हुए उसने ऐसे दस धर्मों की गवेषणा की जिनमें पराकाष्ठा को प्राप्त करने से बुद्धत्व प्राप्त किया जाता है। इन धर्मों का परिपालन करते हुए जब इनकी पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया जाता है, तब इन्हें पारमिता कहा जाता है। दस पारमिताएँ इस प्रकार हैं—(१) दान-पारमिता (जिस प्रकार जिस किसी का औंधा हुआ जलपूर्ण घड़ा अपने को पूर्ण रिक्त कर जल को गिरा देता है उसी प्रकार चित्त में परित्याग की भावना से दान कृत्यों में पराकाष्ठा को प्राप्त करना), (२) शील-पारमिता (जिस प्रकार चमरी गाय पूँछ के कहीं उलझ जाने पर उसकी रक्षा हेतु जीवन के विनाश की भी चिन्ता नहीं करती उसी प्रकार जीवन के विनाश की चिन्ता किये बिना सदाचरण के पालन में पराकाष्ठा को प्राप्त करना), (३) नैष्क्रम्य-पारमिता (बाहर निकलने की इच्छा को नैष्क्रम्य कहते हैं। जिस प्रकार चिरकाल तक बन्धनागार में रहकर दुःख को भोगने वाला मनुष्य वहाँ से निकलने की इच्छा रखता है उसी प्रकार सभी भवों को बन्धनागार समझकर जब उनसे मुक्त होने की इच्छा में पराकाष्ठा को प्राप्त करता है तब उसे नैष्क्रम्य पारमिता कहते हैं), (४) प्रज्ञापारमिता (जिस प्रकार भिक्षाचार करता हुआ भिक्षु उत्तम, मध्यम तथा अधम किसी भी एक कुल को बिना छोड़े भिक्षा प्राप्त करता है उसी प्रकार सभी पण्डित जनों से सभी समय प्रश्न पूछते हुए प्रज्ञा की पराकाष्ठा को प्राप्त करना), (५) वीर्य-पारमिता (जिस प्रकार मृगराज सिंह बैठते, खड़ा होते, चलते सभी अवस्थाओं में आलस्यहीन, उद्योगी तथा दृढ़ता से युक्त होता है उसी प्रकार सभी योनियों में दृढ़ता के साथ वीर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त करना), (६) क्षान्ति-पारमिता (क्षान्ति का अर्थ होता है—सहनशीलता। जिस प्रकार पृथ्वी पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं के फेंके जाने पर सब कुछ सहन करती है, उसीप्रकार मान-अपमान के प्रति सहनशील होकर सहनशीलता की पराकाष्ठा को प्राप्त करना क्षान्ति-पारमिता है), (७) सत्य-पारमिता (जिस प्रकार शुक्रतारा देवलोक में एक समान हो वर्षा या अन्य समय में अपने गमनमार्ग का अतिक्रमण नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है, उसी प्रकार सत्य के मार्ग से कभी भी विचलित न होकर सत्यकथन में चरमोत्कर्ष प्राप्त करना), (८) अधिष्ठान-पारमिता (जिस प्रकार अचल एवं सुप्रतिष्ठित पर्वत हवा से झकझोरे जाने पर भी काँपता नहीं है, अपने स्थान पर ही स्थित रहता है उसी प्रकार अपने निश्चय में अचल रहने में पराकाष्ठा को प्राप्त करना), (९) मैत्री-पारमिता (जिस प्रकार जल पापी एवं पुण्यात्मा दोनों को समान रूप से शीतलता प्रदान करता है, उसी प्रकार शत्रु और मित्र दोनों के प्रति मैत्री की भावना करते हुए मैत्री की पराकाष्ठा को प्राप्त करना), (१०) उपेक्षा-पारमिता (जिस प्रकार पृथ्वी अपने ऊपर पवित्र और अपवित्र वस्तुओं के फेंके जाने पर दोनों के प्रति क्रोध या प्रसन्नता के भाव से रहित होकर उपेक्षा भाव को धारण करती है, उसी प्रकार सुख एवं दुःख में समभाव को धारणकर उपेक्षा में पराकाष्ठा को प्राप्त करना)।

पारमिताओं के विस्तृत वर्णन के लिये देखिये निदान-कथा पृ० ४८-६२।

(७१) प्रस्तुत पद्य में पारमिता में लता का आरोप कर सुन्दर एवं स्पष्ट रूपक-योजना प्रस्तुत की गई है। चेतोदराज=चेत (चेतस् = चित्त)+उद (जल)+राज। सेक=सींचने की क्रिया। वुद्धा+वृद्धा। वाड = वेष्टन।

(७२) इस पद्य में भगवान् बुद्ध में चन्द्रमा का आरोप कर रूपक-योजना द्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है कि दीपंकर बुद्ध के द्वारा की गयी भविष्यवाणी के दिन से ही पारमिताओं के परिपाचन से प्राप्त पारमितागुणों से भगवान् बुद्ध प्राणियों को प्रफुल्लित करें।

इसके बाद पद्य संख्या ७३ से पद्य संख्या ८२ तक दस पारमिताओं में से प्रत्येक का एक एक पद्य में वर्णन किया गया है।

(७३) चित्त में परित्याग की भावना से दानकृत्यों का सम्पादन दान-परम्परा है और बदले में प्राप्ति की आशा न करना दानफल-परम्परा है।

(७४) अग्घ (पाप) <अघ (छान्दस हेतु)।

(७५) निक्खमन (निष्क्रमण)=महाभिनिक्खमन। पच्छिमत्तं=पच्छिम (पश्चिम)+अत्तं (आत्मन्)। भवदुखा=भवदुक्खा (छान्दस हेतु)।

(७६) अनित्य, दुःख एवं अनात्म का भेदन कर निर्वाण प्राप्त करानेवाली तथा एकाग्रता एवं स्मृति से युक्त प्रज्ञा भक्तों को अन्धकार को दूर करे। संसार अनित्य, दुःख एवं अनात्म भाव से युक्त है किन्तु प्राणी अज्ञान से उसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नित्य, सुख एवं आत्म के रूप में देखता है। प्रज्ञा से प्राणी का उक्त अन्धकार दूर होता है। जन्तुखित्ता=मिथ्यादृष्टियों में लिप्त प्राणी। खित्ता=खित्तानि (मिथ्यादृष्टियों के अन्धकारों को)। तयोनं=तेसं (छान्दस हेतु)।

(७७) पूर्वजन्म में जब बोधिसत्त्व जनक नामक राजपुत्र थे तब १६ वर्ष की अल्पायु में ही मां से कुछ धन लेकर धन कमाने के लिए नौका पर चढ़ स्वर्ण भूमि को रवाना हुए। रास्ते में नौका टूट गयी। बोधिसत्त्व जनक समुद्र में तैरने लगा तथा लगातार सप्ताह भर तैरता रहा। इसी बीच मणिमेखला नामक समुद्र की देवी ने उसकी परीक्षा ली और उसे अत्यन्त वीर्यवान् पा अपने बल से उसे मिथिला नगर पहुँचा दिया (द्रष्टव्य—महाजनक-जातक, जातक भा० २ पृ० १६६)।

(७९) चतुरसङ्खिय=चतुरसङ्खेय। परिभावित=विचारित, विकसित।

(८०) सत्तेन=सत्थेन (शस्त्रेण)।

(८१) तदितरं=लोकियं (लौकिकं)

(८२) पभुतट्ट=पभुता+अट्ट। सुनिब्बिकारं=सुनिब्बिकारत्तं (छान्दस हेतु)।

(८३) पदवीविमान—यह तुषित विमान का ही पर्यायवाची है। बौद्ध-परम्परा के अनुसार सभी बोधिसत्त्व अपने अन्तिम जन्म से पूर्व तुषित विमान में जन्म लेते हैं। इस प्रकार तुषित विमान संसारिक भव एवं अन्तिम भव के बीच की कड़ी है। फलतः यह तुषित विमान पदवी विमान कहलाता है।

(८४) समाज में भगवान् बुद्ध की कीर्ति इस प्रकार थी—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। इसी कीर्ति शब्द को कवि ने यहाँ छन्दोबद्ध किया है। इसमें आये प्रत्येक पद की व्याख्या के लिए देखिये विसुद्धिमग्ग, परिच्छेद ७।

(८५) जनता के द्वारा भगवान् बुद्ध के पास धरोहर के रूप में जमा किये गये सुख का तात्पर्य धर्म से है जो शुद्ध चित्त से उत्पन्न होता है। वह धर्म रूपी सुख विभिन्न वर्णों के रत्नों के ढेर से उत्पन्न होने वाले सुख से अत्यन्त भिन्न है। कारण, रत्नों के समूह से उत्पन्न होनेवाला सुख नश्वर है जब कि धर्म से उत्पन्न सुख अनश्वर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८६) प्रस्तुत पद्य में वाणी में रत्नावली का आरोप कर रूपक-योजना से उससे विवर्णता को हटाकर श्रीसंगम कराने की कामना की गयी है। वाणी, उसके प्रकार एवं गुणों में माला, धागे के रंग तथा धागे में पिरोये गये रत्नों का आरोप कर उक्त रूपक-योजना को प्रगट किया गया है। पद्य में वेवण्णियं (वैवर्ण्यम्) तथा सिरी (श्री)—इन दो शब्दों के माला तथा वाणी के पक्ष में अलग अलग अर्थ निकलते हैं। फलतः पद्य का अर्थ इस प्रकार होगा—जिस प्रकार माला मनुष्य के शरीर के फीकेपन को समाप्त कर सौन्दर्य उत्पन्न करती है उसी प्रकार भगवान् की वाणी मनुष्यों की वर्णहीनता (वाणी के दोष) को समाप्त कर समृद्धि या सौभाग्य (निर्वाण) के लिए हो।

(८७) इस पद्य में भी रूपक-योजना के सहारे कवि कामना करता है कि भगवान् के गुणों का स्तवन जब कानों में जाता है तो उन गुणों के श्रवण से रोमाञ्चित हो मनुष्य निर्वाण प्राप्त करे। अत्त=शरीर या चित्त। कतलोमहंसबीजंकुरी=कतलोमहंसबीजंकुरवति (खेत्ते का विशेषण होने से सप्तमी विभक्ति)।

(८८) अपाय का अर्थ है—नरक। अतः आपायिकका तात्पर्य है नारकीय। जिस प्रकार गर्मी से सूखे हुए कदम्ब के वृक्ष में वर्षा के पानी से सहसा कोंपलें प्रगट हो जाती हैं उसी प्रकार भगवान् बुद्ध के उपदेश से भक्तों के मस्तिष्क भक्ति और श्रद्धा से ओतप्रोत हो जाते हैं और उनमें ज्ञान का आविर्भाव होना प्रारम्भ हो जाता है।

(८९) सत्तहितमावहणेन = सत्तहितमावहणे। चरितब्भुतं=अब्भुतं चरितं। अत्थसिघ्या = अत्थसिद्धिया (छान्दस हेतु)।

(९०) पंकेरुहं=पंकेरुहट्ठं। सरतं भत्तत्तनो = अत्तनो सरतं भत्तानं।

(९२) ठपित=ठपिता, लहु = लहुं, पापयन्तु=पापयतु (छान्दस हेतु)

(९४) जब अनुनय-विनय करने पर भी राम अयोध्या वापस लौटने को तैयार नहीं हुए तब भरत राम की पादुकाएं लेकर ही लौट आये और उन पादुकाओं को राज्य सिंहासन पर रखकर १४ वर्ष तक राज्य का संचालन करते रहे। इसी भाव को ग्रहण कर कवि कहता है कि राम की पादुकाओं की तरह भगवान् बुद्ध के द्वारा उपभुक्त पात्र अप्पमुख एवं अनागत लोक के कल्याण के लिये हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९६) आभत्तो = आभतो (छान्दस हेतु)

(९७) प्रस्तुत पद्य में कवि भगवान् के गुणों में मञ्जरी का आरोप करते हुएं कहता है कि जिस प्रकार सुगन्ध एवं वर्ण से युक्त, उत्तम फल की अंगभूत लता पर विकसित तथा भ्रमरों को रस पान कराती हुई मञ्जरी मनुष्यों के मस्तिष्कों द्वारा सम्मानित होती हैं। उसी प्रकार प्रीति और प्रशंसा से युक्त, निर्वाण के अंगभूत ईर्यापथ से विकसित भक्तजनों को सन्तुष्ट करने वाले भगवान् के गुण पृथ्वी पर भक्तों को शिरोधार्य बने रहे। चर्या = चरिया (ईर्यापथ = भिक्षुओं द्वारा पाप से बचाव के लिये चलने, उठने, बैठने एवं सोने में निर्धारित नियमों का पालन करना)।

(९८-९९) पद्य ९८ में धर्मसरिता में गङ्गा का तथा पद्य ९९ में अष्टांगिक मार्ग में नौका का आरोप कर सुन्दर एवं स्पष्ट रूपक-योजना प्रस्तुत की गयी है।

(१००) बुद्ध के शासन में समुद्र का आरोप कर उससे अमृत (निर्वाण) प्राप्त करने की कामना की गयी है।

मन्थसेल = मन्दर पर्वत, दिसतामतं = दिसतु + अमतं।

(१०१) विधिना = ठीक प्रकार से, विधिना = विधि (अष्टांगिक मार्ग) से। खिलदोसनासं = अखिलदोसनासं; जरता = जरा (छान्दस हेतु)।

(१०२) भगवान् बुद्ध के संघ में कमल-समूह का आरोप कर उससे उत्तम मधु (निर्वाण) की कामना की गयी है। पद्य में आये पारिभाषिक शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—धर्म = मध्यमा प्रतिपदा, धुतङ्ग = क्लेशों को नष्ट कर देने के कारण धुत (परिशुद्ध) भिक्षु के अंग जिनकी संख्या १३ है (देखिए विसुद्धिमग्ग धुतङ्गनिद्देस), संवर = काय तथा वाणी द्वारा शीलों का उल्लंघन न करना अर्थात् अकुशल धर्मों से अपने को ढंकना, समाधि = चित्त की एकाग्रता, शासन = आज्ञा, उपदेश।

(१०३) रञ्ञ = अरञ्ञ (वन)। बुद्धप्रिय के गुरु वनरतन के लिये रञ्ञ-रतन का प्रयोग किया गया है।

(१०४) अनुस्सति = बार-बार उत्पन्न होने से स्मृति को ही अनुस्मृति कहते हैं अथवा प्रव्रजित हुएं कुलपुत्र के अनुरूप स्मृति को अनुस्मृति कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

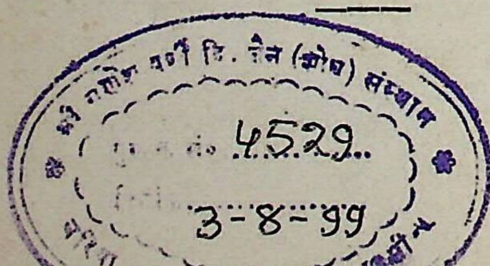
अनुस्मृति दस प्रकार की होती हैं। इनकी गणना चालीस कर्मस्थानों में की गयी है। योगानुयोग ही कर्म है तथा इसके स्थान को कर्मस्थान कहते हैं। दूसरे शब्दों में कर्मस्थान को समाधि का साधन कह सकते हैं। रोमनलिपि में बुद्धानुस्सति के स्थान पर 'वत्थानुस्सति' पाठ उपलब्ध होता है। किन्तु दस अनुस्मृतियों में वत्थानुस्सति की गणना न होने से तथा प्रस्तुत ग्रन्थ में बुद्ध के रूप एवं गुणों का वर्णन होने से वत्थानुस्सति के स्थान पर बुद्धानुस्सति पद ही अधिक सार्थक प्रतीत होता है। ता बोधि = ता बोधियो (बोधि प्राप्त करने की अवस्थाएँ)।

●

बोधिनी में उद्धृत ग्रन्थों का विवरण

१.	चुल्लवग्गपालि	नालन्दा (बिहार), १९५६
२.	जातकपालि	नालन्दा (बिहार), १९५९
३.	निदानकथा	चौखम्बा, वाराणसी, १९७०
४.	पाइअसद्दमहण्णवो	प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६३
५.	भक्तामरस्तोत्र	मानतुङ्गाचार्य कृत जैन स्तोत्र
६.	मज्झिमनिकायपालि	नालन्दा (बिहार), १९५८
७.	पालि मोग्गल्लान-व्याकरण	होशिआरपुर, १९६५
८.	विसुद्धिमग्गो	सं० वि० वि० वाराणसी १९६९-१९७०
९.	समन्तपासादिका	नालन्दा (बिहार), १९६४-१९६७
१०.	सुमङ्गलविलासिनी	नालन्दा (बिहार), १९७४-१९७५

———


4529
3-8-99

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi